https://ganeriwalaca.com/blog

https://duttmission.com/blogs.html

रविन्द्र कुमार गनेड़ीवाला (CA R K Ganeriwala, Nagpur)

+91 94223 10075 ॥ हरि ॐ तत सत ॥

।। गीता – भूमिका ।।

कुरु क्षेत्र की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया था वह श्रीमद्भगवदगीता के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में १८ अध्याय और 700 श्लोक हैं। जैसा गीता के शंकर भाष्य में कहा है- तं धर्मं भगवता यथोपदिष्ट वेदव्यास: सर्वज्ञोभगवान् गीताख्यै: सप्तभि: श्लोकशतैरु पनिबंध। ज्ञात होता है कि लगभग 20वीं सदी के शुरू में गीता प्रेस गोरखपुर (1925) के सामने गीता का वही पाठ था जो आज हमें उपलब्ध है। 20वीं सदी के लगभग भीष्मपर्व का जावा की भाषा में एक अनुवाद हुआ था। उसमें अनेक मूलश्लोक भी सुरक्षित हैं।

श्रीपाद कृष्ण बेल्वेलकर के अनुसार जावा के इस प्राचीन संस्करण में गीता के केवल साढ़े इक्यासी श्लोक मूल संस्कृत के हैं। उनसे भी वर्तमान पाठ का समर्थन होता है। गीता की गणना प्रस्थानत्रयी में की जाती है, जिसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र भी संमिलित हैं। अतएव भारतीय परंपरा के अनुसार गीता का स्थान वही है जो उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रों का है।

गीता के माहात्म्य में उपनिषदों को गौ और गीता को उसका दुग्ध कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उपनिषदों की जो अध्यात्म विद्या थी, उसको गीता सर्वांश में स्वीकार करती है। उपनिषदों की अनेक विद्याएँ गीता में हैं। जैसे, संसार के स्वरूप के संबंध में अश्वत्थ विद्या, अनादि अजन्मा ब्रह्म के विषय में अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति या जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या और अपरा प्रकृति या भौतिक जगत के विषय में क्षरपुरुष विद्या। इस प्रकार वेदों के ब्रह्मवाद और उपनिषदों के अध्यात्म, इन दोनों की विशिष्ट सामग्री गीता में संनिविष्ट है। उसे ही पुष्पिका के शब्दों में ब्रह्मविद्या कहा गया है।

गीता में 'ब्रह्मविद्या' का आशय निवृत्तिपरक ज्ञानमार्ग से है। इसे सांख्यमत कहा जाता है जिसके साथ निवृत्तिमार्गी जीवनपद्धति जुड़ी हुई है। लेकिन गीता उपनिषदों के मोड़ से आगे बढ़कर उस युग की देन है, जब एक नया दर्शन जन्म ले रहा था जो गृहस्थों के प्रवृत्ति धर्म को निवृत्ति मार्ग के समकक्ष और उतना ही फलदायक मानता था। इसी का संकेत देनेवाला गीता की पुष्पिका में 'योगशास्त्रे' शब्द है। यहाँ 'योगशास्त्रे' का अभिप्राय नि:संदेह कर्मयोग से ही है।

गीता में योग की दो परिभाषाएँ पाई जाती हैं। एक निवृत्ति मार्ग की दृष्टि से जिसमें 'समत्वं योग उच्यते' कहा गया है अर्थात् गुणों के वैषम्य में साम्यभाव रखना ही योग है। सांख्य की स्थिति यही है। योग की दूसरी परिभाषा है 'योग: कर्मसु कौशलम' अर्थात् कर्मों में लगे रहने पर भी ऐसे उपाय से कर्म करना कि वह बंधन का कारण न हो और कर्म करनेवाला उसी असंग या निर्लेप स्थिति में अपने को रख सके जो ज्ञानमार्गियों को मिलती है। इसी युक्ति का नाम बुद्धियोग है और यही गीता के योग का सार है।

गीता के दूसरे अध्याय में जो 'तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता' की धुन पाई जाती है, उसका अभिप्राय निर्लेप कर्म की क्षमतावली बुद्धि से ही है। यह कर्म के संन्यास द्वारा वैराग्य प्राप्त करने की स्थिति न थी बल्कि कर्म करते हुए पदे पदे मन को वैराग्यवाली स्थिति में ढालने की युक्ति थी। यही गीता का कर्मयोग है। जैसे महाभारत के अनेक स्थलों में, वैसे ही गीता में भी सांख्य के निवृत्ति मार्ग और कर्म के प्रवृत्तिमार्ग की व्याख्या और प्रशंसा पाई जाती है। एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा गीता का अभिमत नहीं, दोनों मार्ग दो प्रकार की रु चि रखनेवाले मनुष्यों के लिए हितकर हो सकते हैं और हैं। संभवत: संसार का दूसरा कोई भी ग्रंथ कर्म के शास्त्र का प्रतिपादन इस सुंदरता, इस सूक्ष्मता और निष्पक्षता से नहीं करता। इस दृष्टि से गीता अद्भुत मानवीय शास्त्र है। इसकी दृष्टि एकांगी नहीं, सर्वांगपूर्ण है। गीता में दर्शन का प्रतिपादन करते हुए भी जो साहित्य का आनंद

है वह इसकी अतिरिक्त विशेषता है। तत्वज्ञान का सुसंस्कृत काव्यशैली के द्वारा वर्णन गीता का निजी सौरभ है जो किसी भी सहृदय को मुग्ध किए बिना नहीं रहता।

श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि महाभारत का युद्ध है। जिस प्रकार एक सामान्य मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं में उलझकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और उसके पश्चात जीवन के समरांगण से पलायन करने का मन बना लेता है उसी प्रकार अर्जुन जो महाभारत का महानायक है अपने सामने आने वाली समस्याओं से भयभीत होकर जीवन और क्षत्रिय धर्म से निराश हो गया है, अर्जुन की तरह ही हम सभी कभी-कभी अनिश्चय की स्थिति में या तो हताश हो जाते हैं और या फिर अपनी समस्याओं से उद्विग्न होकर कर्तव्य विमुख हो जाते हैं।

गीता को धार्मिक ग्रंथ में गिनती करते हुए भी, यह ग्रंथ प्रबंधन का महानतम ग्रंथ है क्योंकि जीवन के मूल्य, संसार में कार्य करते हुए कैसे रहे, व्यक्ति के अचार - विचार, खान - पान आदि को इसी ग्रंथ में बताया गया है। समस्त अंधविश्वासों से परे सृष्टि के विस्तार से ले कर आधुनिक जीवन में गीता में जो वर्णन है, वह सदियों से अक्षुण्ण सत्य की भांति है। इसलिए लगभग सभी महान पुरुषो ने गीता को अपनाया है।

भारत वर्ष के ऋषियों ने गहन विचार के पश्चात जिस ज्ञान को आत्मसात किया उसे उन्होंने वेदों का नाम दिया। इन्हीं वेदों का अंतिम भाग उपनिषद कहलाता है। मानव जीवन की विशेषता मानव को प्राप्त बौद्धिक शक्ति है और उपनिषदों में निहित ज्ञान मानव की बौद्धिकता की उच्चतम अवस्था तो है ही, अपितु बुद्धि की सीमाओं के परे मनुष्य क्या अनुभव कर सकता है उसकी एक झलक भी दिखा देता है।

कहते है कि महाभारत के युद्ध के उपरांत कृष्ण अर्जुन बैठे हुए संवाद कर रहे थे, तो अर्जुन ने पुनः युद्ध भूमि में सुनाई गीता को सुनने की इच्छा प्रकट की। तब भगवान ने कहा कि उस समय मैने जो कहा था वह योगयुक्त अन्तःकरण से कहा था। जो अब संभव नही। यह बात अनुगीता में बताई हुई है। किसी कथन को अन्तःकरण से कहना एवम अन्तःकरण से ही सुनना या पढ़ना, जब तक नही होगा, गीता का महत्व भी नही समझ आ सकता।

गीता का पूरा नाम श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद है, जिसे किसी भी अध्याय के अंत मे पढ़ा जा सकता है। भगवद उपनिषद भी इसलिये कहा गया है कि इसे भगवान द्वारा स्वयं गाया हुआ है।

गीता शब्द ज्ञान विषयक ग्रन्थ को कहते है। महाभारत के कई फुटकर प्रकरण में पिंगलगीता, शंपाक गीता, मनकीगीता, बोध्य गीता, पराशर गीता आदि गीता का वर्णन है। इस के अतिरिक्त कपिल गीता, ब्रह्म गीता, यम गीता, व्यास गीता जैसी अनेक गीताये भी है।

किन्तु भगवद गीता के यह सब गीता एक हिस्से जैसे ही है। किंतु बिना समुंद्र में डूबे, समुन्द्र की गहराई को कौन जान सकता है? राम रावण युद्ध मे अनेक वानर समुद्र में पत्थर डालते गए और वह सभी पत्थर बिना समुंद्र की गहराई जाने समुंद्र में तैरते रहे। किन्तु समुद्र मंथन के समय मंदराचल पर्वत ही समुन्दर में नीचे पाताल तक घस गया। संसार में हम सब अपना अपना जीवन व्यतीत कर के गुजर जाते है, किंतु गीता वो ही जान सकता है जो इस की गहराई तक धस सके।

गीता के एक श्लोक प्रतिदिन शुरू करते है। इस मे अंग्रेजी का विवरण मुझे मेरे मित्र श्री अश्विन नागर जी ने दिया है, जिसे भी मैने कुछ स्थानों पर संशोधित किया है। हिंदी समीक्षा को भी मैंने दस पुस्तको एवम गूगल से अध्ययन के बाद संक्षिप्त में लिखा है। इस पर सभी संशय के प्रश्न आप पूछ सकते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता - भूमिका ।।

।। Preamble : Lamenting the Consequences of War - Arjun vishad Yog ।। Chapter 1 ।।

The Bhagavad Gita, or the song of God, was revealed by Lord Shree Krishna to Arjun on the threshold of the epic war of Mahabharata. A decisive battle between two sets of cousins, the Kauravas and the

Pandavas, was just about to commence on the battlefield of Kurukshetra. A detailed account of the reasons that led to such a colossal war; is given under Introduction-The Setting of the Bhagavad Gita.

The Bhagavad Gita is primarily a conversation between Lord Shree Krishna and Arjun. However, the first chapter begins with a dialogue between King Dhritarashtra and his minister Sanjay. Dhritarashtra being blind, could not leave his palace in Hastinapur but was eager to know the ongoings of the battlefield.

Sanjay was a disciple of Sage Ved Vyas, the author of the epic Mahabharata and several other Hindu scriptures. Sage Ved Vyas possessed a mystic ability to see and hear events occurring in distant places. He had bestowed upon Sanjay the miraculous power of distant vision. Therefore, Sanjay could see and hear, what transpired on the battleground of Kurukshetra, and gave a first-hand account to King Dhritarashtra while still being in his palace.

(Preamble - courtesy: Swami Mukundanan da - The Song of GOD)

।। प्रस्तावना - अर्जुन विषाद योग - गीता अध्याय प्रथम ।।

प्रथम अध्याय का नाम अर्जुनविषादयोग है। वह गीता के उपदेश का विलक्षण नाटकीय रंगमंच प्रस्तुत करता है जिस में श्रोता और वक्ता दोनों ही कुतूहल शांति के लिए नहीं वरन् जीवन की प्रगाढ़ समस्या के समाधान के लिये प्रवृत्त होते हैं। शौर्य और धैर्य, साहस और बल इन चारों गुणों की प्रभूत मात्रा से अर्जुन का व्यक्तित्व बना था और इन चारों के ऊपर दो गुण और थे एक क्षमा, दूसरी प्रज्ञा। बलप्रधान क्षात्रधर्म से प्राप्त होनेवाली स्थिति में पहुँच कर सहसा अर्जुन के चित्त पर एक दूसरे ही प्रकार के मनोभाव का आक्रमण हुआ, कार्पण्य का। एक विचित्र प्रकार की करुणा उस के मन में भर गई और उस का क्षात्र स्वभाव लुप्त हो गया। जिस कर्तव्य के लिए वह कटिबद्ध हुआ था उस से वह विमुख हो गया। ऊपर से देखने पर तो इस स्थिति के पक्ष में उस के तर्क धर्मयुक्त जान पड़ते हैं, किंतु उस ने स्वयं ही उसे कार्पण्य दोष कहा है और यह माना है कि मन की इस कातरता के कारण उस का जन्मसिद्ध स्वभाव उपहत या नष्ट हो गया था। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि युद्ध करे अथवा वैराग्य ले ले। क्या करे, क्या न करे, कुछ समझ में नहीं आता था। इस मनोभाव की चरम स्थिति में पहुँचकर उस ने धनुषबाण एक ओर डाल दिया।

कृष्ण ने अर्जुन की वह स्थिति देखकर जान लिया कि अर्जुन का शरीर ठीक है किंतु युद्ध आरंभ होने से पहले ही उस अद्‌भुत क्षत्रिय का मनोबल टूट चुका है। बिना मन के यह शरीर खड़ा नहीं रह सकता। अतएव कृष्ण के सामने एक गुरु कर्तव्य आ गया। अत: तर्क से, बुद्धि से, ज्ञान से, कर्म की चर्चा से, विश्व के स्वभाव से, उसमें जीवन की स्थिति से, दोनों के नियामक अव्यय पुरुष के परिचय से और उस सर्वोपरि परम सत्तावान ब्रह्म के साक्षात दर्शन से अर्जुन के मन का उद्धार करना, यही उनका लक्ष्य हुआ। इसी तत्वचर्चा का विषय गीता है। पहले अध्याय में सामान्य रीति से भूमिका रूप में अर्जुन ने भगवान से अपनी स्थिति कह दी।

गीता जिस भौगोलिक स्थिति में शुरू की गई है, वह सामान्य जीवन की वास्तविक स्थिति है जब मनुष्य अपने कर्तव्य पालन के लिये अनेक विरोधों का सामना करता है, जिस में अधिकांश उस के अपने होते है। यद्यपि ज्ञान पर्याप्त होने के बावजूद निर्णय नही ले पाता। इसलिये वह निराशा से घिर जाता है।

गीता में अर्जुन जिन तर्क के साथ प्रश्न करता है, वह उस के शाब्दिक ज्ञान के ही शब्द होते है। अन्तःकरण से उपजा ज्ञान, जिसे हम मनोमय से पहचानेंगे, कभी भी व्यक्ति को भ्रम की स्थिति में नही डालता। अतः जिस को हम नही जानते उसे संशय निवारण हेतु एवम जिज्ञासा द्वारा समझना जरूरी है, जो हम प्रायः अपने अहम में

नकारात्मक हो कर समझने से पहले ही निर्णय ले चुके होते है। यह गीता पढ़ने से पूर्व भी सांसारिक द्वंद में उलझे हुए लोग, अक्सर गीता के बारे में अपने तर्क रखते ही रहते है। हमे इन से सावधान हो कर समर्पित भाव से गीता को अन्तःकरण से ही समझना होगा।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता अध्याय प्रथम ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.1॥

धृतराष्ट्र उवाच,
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

“dhṛtarāṣṭra uvāca,
dharma-kṣetre kuru-kṣetre,
samavetā yuyutsavaḥ..I
māmakāḥ pāṇḍavāś caiva,
kim akurvata sañjaya”..II

भावार्थ :

धृतराष्ट्र ने कहा - हे संजय! धर्म-भूमि और कर्म-भूमि में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे पुत्रों और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?॥ १॥

Meaning:

Dhritraashtra said:

In Kurukshetra, the field of the Kurus and also the field of righteousness, both my sons and Pandu's sons gathered, eager to fight. What did they do, O Sanjaya?

Explanation:

So begins the first chapter of the Gita. The first chapter is a dialog between Dhritraashtra, father of the Kauravas and Sanjaya, his charioteer and also his adviser. Sanjaya was given divine vision so that he could provide a real-time commentary on the Mahabharata war for the sightless Dhritraashtra.

This verse begins to reveal one of the recurring themes of the Gita - the downside of extreme attachment to objects or situations. Dhritraashtra means someone who clings to his kingdom, and Sanjaya means victory. Dhritraashtra was extremely attached to his sons and his kingdom, which is one of the reasons that the Mahabharata war occurred. He refers to his nephews as "Pandu's sons" indicating that they are a 3rd party, whereas his sons are referred to as "my sons".

What exactly is attachment? Here's an example. Let's say Mr. X brought a brand new car. He shows it to all his friends, they ooh and they aah, his spouse is happy, his kids are jumping up and down and so on. When he hears all the praises, there usually is something inside him that "puffs up". That thing is the ego. Now let's say a few weeks have passed. It's morning and as he opens the car door,

he notices a large dent on the side of the car. He begins to experience anger, sadness, and a whole host of other emotions.

What just happened? It was attachment to the car. Mr. X's ego created an identification with the new car. In other words, it began to think of the car as an extension of its identity. So any praise for the car became the ego's praise, and any harm to the car became the ego's harm. The ego strengthens itself by attachment, i.e. identification with objects, thoughts (I am smart, I am sincere etc), positions (e.g. right wing vs. left wing). Eckhart Tolle talks about ego and attachment in his books "The Power Of Now" and "A New Earth".

So what is the practical lesson here? Later chapters and verses will go in detail into this subject, but till then, this verse urges us to examine our life and take stock of our attachments. What are our attachments? How strong are those attachments? What can we do to prevent ourselves getting entangled in more and more attachments?

Also - at this point, do we think that all attachments are bad? Or are some good? Upon introspection we will find the answers. The Gita will begin to address those questions as we go further into it.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सम्पूर्ण गीता में यही एक मात्र श्लोक अन्ध वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने कहा है। शेष सभी श्लोक संजय के कहे हुए हैं जो धृतराष्ट्र को युद्ध के पूर्व की घटनाओं का वृत्तान्त सुना रहा था।

निश्चय ही अन्ध वृद्ध राजा धृतराष्ट्र को अपने भतीजे पाण्डवों के साथ किये गये घोर अन्याय का पूर्ण भान था। वह दोनों सेनाओं की तुलनात्मक शक्तियों से परिचित था। उसे अपने पुत्र की विशाल सेना की सार्मथ्य पर पूर्ण विश्वास था। यह सब कुछ होते हुये भी मन ही मन उसे अपने दुष्कर्मों के अपराध बोध से हृदय पर भार अनुभव हो रहा था और युद्ध के अन्तिम परिणाम के सम्बन्ध में भी उसे संदेह था। कुरुक्षेत्र में क्या हुआ इस के विषय में वह संजय से प्रश्न पूछता है। महर्षि वेदव्यास जी ने संजय को ऐसी दिव्य दृष्टि प्रदान की थी जिस के द्वारा वह सम्पूर्ण युद्धभूमि में हो रही घटनाओं को देख और सुन सकता था। महाभारत के भीष्म पर्व में 25 वे अध्याय से 42 वे अध्याय तक गीता कही गई है। प्रकृत वस्तु की सिद्धि के लिये जो चिंता होती है, उसी को उपोदघात कहते है।

युद्ध के कुरुक्षेत्र के चुनाव भी विष्णु द्वारा कुरु के वरदान से संबंधित हो सकता है जिस में भगवान विष्णु ने कुरु को वरदान दिया था इस क्षेत्र में जो भी तप करेगा या युद्ध मे वीरगति को प्राप्त होगा, वह स्वर्ग में जायेगा। वरदान के बाद कुरु ने यहाँ खेती करना छोड़ दिया था। क्षेत्र का अर्थ खेत भी है। भगवान परशुराम जी भी 21 बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने के बाद यही पितृ तर्पण किया था। इसलिये इस को धर्मक्षेत्र या पुण्यक्षेत्र भी कहते है। अर्वाचीन काल मे इस क्षेत्र में अनेक युद्ध हुए है। कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण पर स्नान का महत्व है एवम इस तीर्थ स्थल को बद्रीनाथ, जगन्नाथ एवम गया के समान ही माना गया है।

गीता का प्रारम्भ उस व्यक्ति के वार्तालाप से किया गया है जो महत्वाकांक्षी तो था ही किन्तु अंधे होने के कारण असमर्थ था। उस को अपनी इस कमजोरी का एहसास था, इसलिये वह अपने पुत्र के माध्यम से अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहता था। वार्तालाप में अन्तर्हित इच्छा को दर्शाता यह वाक्य समझने के लिये जरूरी है कि व्यक्ति जो कहता है और जो कहना या सुनना चाहता है, उसे किस प्रकार समझना चाहिए। बोले या कहे हुए शब्दों के अन्तर्हित अर्थ अक्सर अलग ही होते है।

व्यवहारिक जीवन मे हम जो बनना चाहते है और जो बनते है, उस मे अंतर होता है। इसलिए हम अपने पुत्र के माध्यम से उसे पूरा करने का संकल्प ले लेते है। किंतु जब यह महत्वाकांक्षाये विषम परिस्थिति में फस जाती है

तो हमे हमारी विवशता महसूस होती है और हम आशा करते है कि कुछ न कुछ अद्भुत हो जाएगा और हमे वो सब मिल जाएगा, जिसे हम चाहते है, चाहे वो गलत ही क्यों न हो, या फिर उस को कर सकने के हमारे पास सामर्थ्य भी न हो।

उचित, अनुचित, धर्म, सत्य एवम नीतिशास्त्र में क्या सही है, इस का निर्णय लेना अत्यंत कठिन है, गीता इसी का मार्गदर्शन करती है। प्रथम अध्याय उन परिस्थितियों का वर्णन है, जिस में निर्णय लेने की आवश्यकता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.01।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.2॥

संजय उवाच,
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्‌ ॥

sañjaya uvāca,
dṛṣṭvā tu pāṇḍavānīkaḿ,
vyūḍhaḿ duryodhanas tadā..I
ācāryam upasańgamya,
rājā vacanam abravīt..II

भावार्थ :

संजय ने कहा - हे राजन्‌! इस समय राजा दुर्योधन पाण्डु पुत्रों की सेना की व्यूह-रचना को देखकर आचार्य द्रोणाचार्य के पास जाकर कह रहे हैं॥ २॥

Meaning:

Sanjaya said:

Observing that the Pandava army was organized into a military formation, Duryodhana approached his teacher Drona and spoke these words.

Explanation:

Let's look at the character that is introduced in this verse - Duryodhana. Duryodhana was the elder son of Dhritrashtra, and leader of the Kaurava army in the Mahabharata war. He was a skilled and strong warrior, almost equal in prowess to Bhima, the strongest warrior in the Pandava army.

Since childhood, Duryodhana grew up with the idea that he was the rightful heir to the throne and not Yudhishtira, who was the eldest brother of the Pandavas. Going back to the theme of the previous verse which is that of attachment, he was extremely attached to the throne. But because he perceived the Pandavas as an obstacle to the throne, which was something that he was extremely attached to, he developed an aversion towards them.

Think of aversion or in other words, hatred, as the polar opposite of attachment. But interestingly enough, it is born out of attachment itself. For example, we saw that Mr. X from the last post was

extremely attached to his car, and saw that someone had made a large dent in it. What feeling do you think Mr. X had for the person who caused that dent? That is aversion. Aversion is usually caused when we perceive a person, situation or object as an obstacle between us and the object of our attachment. And aversion, just like attachment, strengthens the ego. Examples are people (I hate my boss), objects (I hate my old TV), positions (I hate anyone who believes in communism) or situations (I hate my job).

Now, why did Duryodhana approach his teacher Drona? He saw the mammoth military formation of the Pandavas with their army. The same was more than what he estimated and began to get scared. As is the case, most people run to someone superior when they get scared, so he approached his teacher for counsel. He approaches with pretense of offering respect, but his actual purposes was to palliate his own nervousness.

Drona was a teacher to both the Pandavas and Kauravas, and had equal affinity to both of them. And unlike some of the other senior warriors, Drona was not a blood relation to the Kauravas. Duryodhana also sensed that he needs to check in with Drona to understand his state of mind, because he needed Drona's prowess to win this war.

There is an interesting leadership lesson here. If you are leading a team - in a business, political or any context - your success is not guaranteed unless everyone buys into a common vision that you as a leader have articulated.

।। हिंदी समीक्षा ।।

इस श्लोक से आगे संजय ने कुरुक्षेत्र में जो कुछ देखा और सुना उसका वर्णन है।

गीता में धृतराष्ट्र द्वारा युद्धभूमि का हाल पूछने पर, संजय का कर्तव्य था कि उस का प्रारम्भ वही से करे, जिस को सुनने वाले की अपेक्षा है। अतः वह कौरव सेना से प्रारम्भ करते हुए, दुर्योधन को राजा संबोधित करते हुए कहता है, अपनी जीत के अति आत्म विश्वास से भरे हुए राजा दुर्योधन ने पांडव की सेना एवम उस की व्यूह रचना देखी तो उस की जीत के प्रति निश्चितता में शंका उतपन्न हो गई। इसलिये उस ने द्रोणाचार्य का सम्मान करते हुए उन के पास पहुच कर अपनी शंका का निवारण करने के लिये कहते है।

जब भी हम गलत कार्य पर चल रहे होते है और अपनी क्षमता पर अतिविश्वास भी होता है तो भी अनैतिकता का भय पीछा नही छोड़ता। उस पर जिस को हम कम आंकते है, वो यदि अपेक्षा से अधिक मजबूत नजर आ जाये तो शंका, संदेह और भय घेर लेता है। दुर्योधन जानता था कि जिन के भरोसे उस ने पांडव से समझौता नही किया वो उस के साथ मन से नही है, विवशता से उस के साथ है।

कोई कर्म करते हुये यदि हमारा उद्देश्य पाप और अन्याय से पूर्ण होता है तो अनेक साधनों से सुसम्पन्न होते हुए भी हमारे मन में निश्चय ही चिन्ता अशान्ति और विक्षेप उत्पन्न होते हैं। सभी अत्याचारी और तानाशाही प्रवृत्ति के लोगों की यही मनस्थिति होती है।

गीता की पृष्ठभूमि में अधर्म की राह पर चलनेवाला यह व्यक्ति जो कभी आत्मविश्वास से भरा नही होता, दुर्योधन के रूप में प्रस्तुत है । इसलिये किंचित मात्र भी विरोध या अपेक्षा से विरुद्ध होता है, तो चाहे वो कितना भी ताकतवर, बुद्धिमान, समृद्ध क्यों न हो, भय से घिर जाता है।

अब दुर्योधन अपने गुरु द्रोणाचार्य के पास जाता है, द्रोणाचार्य सेवक और नमक की विवशता से कौरव सेना में खड़े है, वे कौरव और पांडव दोनो के गुरु है, किंतु उन का लगाव अर्जुन से अधिक था और यह बात दुर्योधन भी जानता है, इसलिए संदेह और शंका से घिरा दुर्योधन, अपने गुरु द्रोणाचार्य से क्या कहते है, पढ़ते है।

हमे ध्यान रखना होगा कि व्यापार, परिवार, समाज या धार्मिक संस्थान में नेतृत्व वही स्वीकारा जाता है, जिस में नायक अपने विचारो की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रकट कर सके। अर्थात जो वह चाहता है, वैसे ही उस के शब्द होने चाहिए।

दुर्योधन मन से शंकित है किंतु विचार प्रकट करते समय आदर भाव अपनी कुंठा के साथ रखता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.02।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.3॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

"paśyaitāḿ pāṇḍu-putrāṇām,
ācārya mahatīḿ camūm..l
vyūḍhāḿ drupada-putreṇa,
tava śiṣyeṇa dhīmatā"..ll

भावार्थ :

हे आचार्य! पाण्डु पुत्रों की इस विशाल सेना को देखिए, जिसे आप के बुद्धिमान् शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने इतने कौशल से व्यूह के आकार में सजाया है॥ ३॥

Meaning:

Teacher! behold this mighty Pandava army, that your intelligent student Dhrishtadyumna, son of Drupada, has organized in a military formation for battle.

Explanation:

The Gita has many conversations-within-conversations, so it is useful to keep track. In the first two verses, Sanjaya and Dhritrashtra were talking, and in this verse, Duryodhana is addressing his teacher Drona.

Here we begin to explore another theme of the Gita which is that of mental equanimity, or as sometimes it is referred to, "even keelness". We are at our best when our mind, the part of our brain that feels emotions, is calm and not agitated. When our mind is calm it enables our intellect, the part of our brain that evaluates options and makes rational decisions, to give us the most logical way out of a situation. In the TV show "Star Trek", Mr. Spock was always consulted to provide the best decision because he would never take emotions into considerations when making a decision.

In the last verse we saw that Duryodhana wanted to ensure that Drona was sufficiently motivated to fight against his students the Pandavas, lest he become weak due to having a soft spot for them. So Duryodhana attempted to disturb Drona's equanimity by reminding him that the leader of the military formation that is in front of them is the son of Drupada.

Drupada and Drona had a chequered past. They were the best of friends, but due to some misunderstandings, they turned into sworn enemies. Duryodhana was subtly reminding his teacher of a mistake he had committed in the past.

Many years back, Dronacharya along with the Pandavas had defeated King Drupad in a battle and took away half his kingdom. To avenge his defeat, Drupad performed a sacrifice to beget a son. Dhristadyumna was born out of that sacrificial fire, with a boon that he would kill Dronacharya in the future. Even though Dronacharya was aware, when he was approached for Dhristadyumna's military training, he very humbly accepted and imparted all his knowledge impartially to his pupil.

Duryodhana was reminding Dronacharya that even though Dhristadyumna was his pupil, he was also Drupad's son, with a boon to kill him. He wanted to ensure that as in the past, Dhronacharya should not become lenient towards his pupils, now that, they were on the battlefield By reminding Drona that Drupada's son Dhrishtadyunma is leading the opposing army, Duryodhana wanted to stir up Drona's emotion, in order to make him think that his students purposely put Dhrushtadyumna in front, just to spite Drona.

Do we have such biases or filters in our lives through which we view people or situations? How were they formed? Did some Duryodhana plant them in us? Uncovering such biases makes our decision-making clearer and simpler.

।। हिन्दी समीक्षा ।।

व्याख्या   आचार्य द्रोण के लिये आचार्य सम्बोधन देने में दुर्योधन का यह भाव मालूम देता है कि आप हम सब के कौरवों और पाण्डवों के आचार्य हैं। शस्त्रविद्या सिखानेवाले होने से आप सब के गुरु हैं। इसलिये आप के मन में किसी का पक्ष या आग्रह नहीं होना चाहिये।

तव शिष्येण धीमता इन पदों का प्रयोग करने में दुर्योधन का भाव यह है कि आप इतने सरल हैं कि अपने मारने के लिये पैदा होनेवाले धृष्टद्युम्न को भी आप ने अस्त्रशस्त्र की विद्या सिखायी है और वह आप का शिष्य धृष्टद्युम्न इतना बुद्धिमान है कि उस ने आप को मारने के लिये आप से ही अस्त्रशस्त्र की विद्या सीखी है।

द्रुपदपुत्रेण यह पद कहने का आशय है कि आप को मारने के उद्देश्य को ले कर ही द्रुपद ने याज और उपयाज नामक ब्राह्मणों से यज्ञ कराया जिस से धृष्टद्युम्न पैदा हुआ। ज्ञात रहे यज्ञ एक वैज्ञानिक विद्या या विधि है, उस का उद्देश्य उस के गुण को बतलाता है, यदि हत्या आदि हो तो तामसी, किसी फल की प्राप्ति तो राजसी एवम परमात्मा के प्रति समर्पित हो तो सात्विक। इसे विस्तृत हम आगे पढ़ेंगे। वही यह द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न आप के सामने (प्रतिपक्ष में) सेनापति के रूप में खड़ा है। बहुत पहले जब द्रुपद ने द्रोणाचार्य का अपमान किया था, तो द्रोणाचार्य ने पांडव की सहायता से उसे हरा कर उस का आधा राज्य ले लिया था। इसी कारण द्रुपद ने बदला लेने धृष्टद्युम्न को यज्ञ द्वारा प्राप्त किया। किंतु द्रुपद के कहने पर धृष्टद्युम्न को युद्ध भी विद्या सिखाई।

यद्यपि दुर्योधन यहाँ द्रुपदपुत्र के स्थान पर धृष्टद्युम्न भी कह सकता था तथापि द्रोणाचार्य के साथ द्रुपद जो वैर रखता था उस वैरभाव को याद दिलाने के लिये दुर्योधन यहाँ द्रुपदपुत्रेण शब्द का प्रयोग करता है कि अब वैर

निकालने का अच्छा मौका है तथा उन की गलती को अहसास दिलाना कि जिसे उन्होंने शिष्य बना कर युद्ध विद्या दी, आज वही उन के विरुद्ध उन को मारने के लिए खड़ा है।

पाण्डुपुत्राणाम् एतां व्यूढां महतीं चमूं पश्य द्रुपदपुत्र के द्वारा पाण्डवों की इस व्यूहाकार खड़ी हुई बड़ी भारी सेना को देखिये। तात्पर्य है कि जिन पाण्डवों पर आप स्नेह रखते हैं उन्हीं पाण्डवों ने आप के प्रतिपक्ष में खास आप को मारने वाले द्रुपदपुत्र को सेनापति बनाकर व्यूह रचना करने का अधिकार दिया है। अगर पाण्डव आप से स्नेह रखते तो कम से कम आप को मारनेवाले को तो अपनी सेना का मुख्य सेनापति नहीं बनाते इतना अधिकार तो नहीं देते। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी उन्होंने उसी को सेनापति बनाया है।

यद्यपि कौरवों की अपेक्षा पाण्डवों की सेना संख्या में कम थी अर्थात् कौरवों की सेना ग्यारह अक्षौहिणी और पाण्डवों की सेना सात अक्षौहिणी थी तथापि दुर्योधन पाण्डवों की सेना को बड़ी भारी बता रहा है। पाण्डवों की सेना को बड़ी भारी कहने में दो भाव मालूम देते हैं

(1) पाण्डवों की सेना ऐसे ढंग से व्यूहाकार खड़ी हुई थी जिससे दुर्योधन को थोड़ी सेना भी बहुत ब़ड़ी दीख रही थी और (2) पाण्डव सेना में सब के सब योद्धा एक मत के थे। इस एकता के कारण पाण्डवों की थोड़ी सेना भी बल में उत्साह में बड़ी मालूम दे रही थी। ऐसी सेना को दिखाकर दुर्योधन द्रोणाचार्य से यह कहना चाहता है कि युद्ध करते समय आप इस सेना को सामान्य और छोटी न समझें। आप विशेष बल लगाकर सावधानी से युद्ध करें।

पाण्डवों का सेनापति है तो आप का शिष्य द्रुपदपुत्र ही अतः उस पर विजय करना आपके लिये कौन सी बड़ी बात है।

एतां पश्य कहने का तात्पर्य है कि यह पाण्डवसेना युद्ध के लिये तैयार होकर सामने खड़ी है। अतः हमलोग इस सेना पर किस तरह से विजय कर सकते हैं इस विषय में आप को जल्दी से जल्दी निर्णय लेना चाहिये।

दुर्योधन के आंतरिक भय एवम शंका को एक अच्छे तरीके से प्रस्तुत करता यह संदेश मुख्यतः उस के आत्मविश्वास की कमजोरी को ही दर्शाता है कि कौरव सेना में एक से बढ़ कर एक महारथी होने के बाद भी उसे उन की सहयोग एवम समर्थन में कमी दिख रही है, जबकि वह पांडव सेना में ज्यादा उत्साह देख रहा है। दुर्योधन चतुर था इसलिये द्रोणाचार्य को सचेत द्रुपुद पुत्र धृष्टद्‌युम्न के पुराने वैर को दिखा कर उन का जोश एवम समर्थन प्राप्त करना चाहता था।

व्यवहारिक जीवन मे जब कोई व्यक्ति किसी की बुराई या किसी के व्यवहार को आप के प्रति नकारात्मक रूप से दिखाए तो अवश्य ही उस मे उस स्वार्थ छुपा रहता है या फिर अपनी कमजोरी छुपाने के लिये आप को नीचा दिखाना चाहता है, इसलिये हमे अपना विवेक और संयम बनाये रखना चाहिए। यह ध्यान देने की बात है कि अपना स्वार्थ साधने के लिए लोग आप की कमजोरी, वैर या स्वार्थ को भड़का कर आप को सामने खड़े व्यक्ति के विरुद्ध करना चाहते है। लोभ, स्वार्थ, मद, अहंकार, अस्मिता, वर्चस्व, काम, वासना, प्रशंसा, स्तुति आदि ऐसे दुर्गुण या व्यसन है, जिस में यदि कोई वह जाए तो वह अपना विवेक और संयम खो देता है, मनोवैज्ञानिक भी किसी व्यक्ति के स्वभाव और प्रकृति को जान कर ही उस का इलाज करता है। दुर्योधन भी अपने गुरु पर अपनी स्वार्थी बुद्धि द्वारा इसी मनोविज्ञान का प्रयोग कर रहा है।

द्रोणाचार्य से पाण्डवों की सेना देखने के लिये प्रार्थना कर के अब दुर्योधन उन्हें पाण्डव सेना के महारथियों को दिखाते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.03।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.4-6॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥4।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥5।।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥6।।

"atra śūrā maheṣv-āsā,
bhīmārjuna-samā yudhi..I
yuyudhāno virāṭaś ca,
drupadaś ca mahā-rathaḥ।।4।।"

"dhṛṣṭaketuś cekitānaḥ,
kāśirājaś ca vīryavān..I
purujit kuntibhojaś ca
śaibyaś ca nara-puńgavaḥ।।5।।"

"yudhāmanyuś ca vikrānta,
uttamaujāś ca vīryavān..I
saubhadro draupadeyāś ca,
sarva eva mahā-rathāḥ।।6।।"

भावार्थ :

इस युद्ध में भीम तथा अर्जुन के समान अनेकों महान शूरवीर और धनुर्धर है, युयुधान, विराट और द्रुपद जैसे भी महान योद्धा है। धृष्टकेतु, चेकितान तथा काशीराज जैसे महान शक्तिशाली और पुरुजित्, कुन्तीभोज तथा शैब्य जैसे मनुष्यों मे श्रेष्ठ योद्धा भी है। युधामन्यु जैसे महान पराक्रमी तथा उत्तमौजा जैसे अत्यन्त शक्तिशाली, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों सहित ये सभी महान योद्धा हैं॥ ४-६॥

Meaning:

This army has mighty archers such as Yuyudhaana, King Viraata and Drupada who are equal to Bheema and Arjuna in battle. Other powerful warriors include Dhrishtaketu, Chekitaana, the gallant king of Kashi, Purujit, Kuntibhoja, Yuyudhaana, Uttamauja, Abhimanyu and all the sons of Draupadi.

Explanation:

Duryodhana continued his attempt to incite Drona to fight aggressively against the opposing army by calling out the mighty warriors on the other side. He chose each name carefully to elicit a reaction from Drona, since each of these warriors had a history with Drona. The names of the warriors are not important to understanding the Gita, so no need to worry if you cannot remember these names.

First he described how powerful they are by comparing them with Bhim and Arjun and called them shura and maheshvasa. One who can hold vielding powerful bows and hold arrow are called Mahaeshvasa and who can single handed fight with 10000 soilders called Sura. According to each chairot, warrior is called rathi and maharathi.

Yuyudhaana was Arjuna's top student, and Duryodhana wanted to point out that although Arjuna's top student was fighting on his teacher's side, Drona's top most liked student Arjuna was fighting against his teacher. Drupada also was someone that Drona disliked, as was pointed out earlier. Dhristaketu's father had been killed by Krishna, yet he was on the side of the Pandavas. Chekitaana was the only Yadava warrior not taking the side of the Kauravas.

The king of Kashi was an exceptionally gallant warrior, and took the side of the Pandavas. Yudhamanyu and Uttamauja were exceptional warriors from the Paanchaala kingdom. Purujit and Kuntibhoja were Kunti's maternal brothers who were also related to the Kauravas, but chose the side of the Pandavas. Shaibya was Yudhishtira's father-in-law, similarly related to the Kauravas. Abhimanyu, Arjuna's son, was well versed in the art of breaking military formations. Duryodhana disliked Draupadi immensely, so her sons were pointed out as well.

We begin to see how interrelated the warring parties were. Some were friends who turned into enemies, some were relatives who chose sides, and some like Drona were equally loving to both sides, but had to choose one based on their duty to the throne and the kingdom.

It is a reminder that nothing in our lives stays the same. A relationship that gives you lot of joy today, could in a matter of seconds turn into a sorrowful relationship at some point.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यह आवश्यक नही की गीता के इन योद्धाओं के नाम आप को याद हो या आप गीता पढ़ने के लिए इन्हे याद रखे, किन्तु जब वक़्त बदलता है तो अपने ही अपने विरुद्ध और अपने ही साथ, यह सब अपनी ही जान पहचान के लोग होते है। घर, समाज, व्यापार आदि में स्वार्थ, मोह, क्रोध आदि से जो झगड़े आदि होते है, वह अपनो के बीच में होते है।

व्यक्ति जब अपना आत्म विस्वास खो चुका होता है तो अपने साथ खड़े लोगो को अपने विरुद्ध खड़े लोगो के प्रति उसकाने का काम करता है। दुर्योधन की मानसिक स्थिति कुछ ऐसी ही है। दुर्योधन के साथ देने और अर्जुन के साथ देने वाले लोगो के मध्य आपसी कोई दुश्मनी चाहे न भी, किंतु आप के साथ खड़ा व्यक्ति आप को आप के विरुद्ध खड़े व्यक्ति के पुराने प्रसंग या आप की भावनाओ के आधार पर आप को उन के विरुद्ध और अधिक भड़काता है। इस का कारण उस का भय है कि जिस के साथ में खड़ा हूं कहीं यह पाला न पलट कर उस तरफ न खड़ा हो जाए।

जिन से बाण चलाये जाते हैं, फेंके जाते हैं उनका नाम इष्वास अर्थात् धनुष है। ऐसे बड़े बड़े इष्वास (धनुष) जिनसे पास हैं वे सभी महेष्वास हैं। तात्पर्य है कि बड़े धनुषों पर बाण चढ़ाने एवं प्रत्यञ्चा खींचने में बहुत बल लगता है। जोर से खींचकर छोड़ा गया बाण विशेष मार करता है। ऐसे बड़े बड़े धनुष पास में होने के कारण ये

सभी बहुत बलवान् और शूरवीर हैं। ये मामूली योद्धा नहीं हैं। युद्ध में ये भीम और अर्जुन के समान हैं अर्थात् बल में ये भीम के समान और अस्त्रशस्त्र की कला में ये अर्जुन के समान हैं।

युयुधान(सात्यकि) ने अर्जुन से अस्त्रशस्त्र की विद्या सीखी थी। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा दुर्योधन को नारायणी सेना देने पर भी वह कृतज्ञ होकर अर्जुन के पक्ष में ही रहा दुर्योधन के पक्ष में नही गया। द्रोणाचार्य के मन में अर्जुन के प्रति द्वेषभाव पैदा करने के लिये दुर्योधन महारथियों में सब से पहले अर्जुन के शिष्य युयुधान का नाम लेता हैं। तात्पर्य है कि इस अर्जुन को तो देखिये इस ने आप से ही अस्त्रशस्त्र चलाना सीखा है और आपने अर्जुन को यह वरदान भी दिया है कि संसार मे तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो ऐसा प्रयत्न करूँगा । इस तरह आप ने तो अपने शिष्य अर्जुन पर इतना स्नेह रखा है पर वह कृतघ्न होकर आप के विपक्ष में लड़ने के लिये खड़ा है जबकि अर्जुन का शिष्य उसी के पक्ष में खड़ा है।

युयुधान महाभारत के युद्ध में न मर कर यादवों के आपसी युद्ध में मारे गये थे।

विराटश्च जिस के कारण हमारे पक्ष का वीर सुशर्मा अपमानित किया गया आप को सम्मोहन अस्त्र से मोहित होना पड़ा और हम लोगों को भी जिस की गायें छोड़कर युद्ध से भागना पड़ा वह राजा विराट आप के प्रतिपक्ष में खड़ा है।

राजा विराट के साथ द्रोणाचार्य का ऐसा कोई वैरभाव या द्वेषभाव नहीं था परन्तु दुर्योधन यह समझता है कि अगर युयुधान के बाद मैं द्रुपद का नाम लूँ तो द्रोणाचार्य के मन में यह भाव आ सकता है कि दुर्योधन पाण्डवों के विरोध में मेरे को उकसा कर युद्ध के लिए विशेषता से प्रेरणा कर रहा है तथा मेरे मन में पाण्डवों के प्रति वैरभाव पैदा कर रहा है। इसलिये दुर्योधन द्रुपद के नाम से पहले विराट का नाम लेता है जिस से द्रोणाचार्य मेरी चालाकी न समझ सकें और विशेषता से युद्ध करें।

राजा विराट उत्तर श्वेत और शंख नामक तीनों पुत्रों सहित महाभारतयुद्ध में मारे गये।

आप ने तो द्रुपद को पहले की मित्रता याद दिलायी पर उस ने सभा में यह कह कर आप का अपमान किया कि मैं राजा हूँ और तुम भिक्षुक हो अतः मेरी तुम्हारी मित्रता कैसी तथा वैरभाव के कारण आप को मारने के लिये पुत्र भी पैदा किया वही महारथी द्रुपद आप से लड़ने के लिये विपक्ष में खड़ा है।

राजा द्रुपद युद्ध में द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये।

यह धृष्टकेतु कितना मूर्ख है कि जिस के पिता शिशुपाल को कृष्ण ने भरी सभा में चक्र से मार डाला था उसी कृष्ण के पक्ष में यह लड़ने के लिये खड़ा है।

धृष्टकेतु द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये।

सब यादव सेना तो हमारी ओर से लड़ने के लिये तैयार है और यह यादव चेकितान पाण्डवों की सेना में खड़ा है।चेकितान दुर्योधनके हाथ से मारे गये।

यह काशिराज बड़ा ही शूरवीर और महारथी है। यह भी पाण्डवों की सेना में खड़ा है। इसलिये आप सावधानी से युद्ध करना क्योंकि यह बड़ा पराक्रमी है।

काशिराज महाभारतयुद्ध में मारे गये।

यद्यपि पुरुजित् और कुन्तिभोज ये दोनों कुन्ती के भाई होने से हमारे और पाण्डवों के मामा हैं तथापि इनके मन में पक्षपात होने के कारण ये हमारे विपक्ष में युद्ध करने के लिये खड़े हैं।

पुरुजित् और कुन्तिभोज दोनों ही युद्ध में द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये।

यह शैब्य युधिष्ठिर का श्वशुर है। यह मनुष्यों में श्रेष्ठ और बहुत बलवान् है। परिवार के नाते यह भी हमारा सम्बन्धी है। परन्तु यह पाण्डवों के ही पक्ष में खड़ा है।

पाञ्चालदेश के बड़े बलवान् और वीर योद्धा युधामन्यु तथा उत्तमौजा मेरे वैरी अर्जुन के रथ के पहियों की रक्षा में नियुक्त किये गये हैं। आप इन की ओर भी नजर रखना।

रात में सोते हुए इन दोनों को अश्वत्थामा ने मार डाला।

यह कृष्ण की बहन सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु है। यह बहुत शूरवीर है। इस ने गर्भ में ही चक्रव्यूहभेदन की विद्या सीखी है। अतः चक्रव्यूहरचना के समय आप इस का खयाल रखें।

युद्ध में दुःशासनपुत्र के द्वारा अन्यायपूर्वक सिर पर गदा का प्रहार करने से अभिमन्यु मारे गये।

युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल और सहदेव इन पाँचों के द्वारा द्रौपदी के गर्भ से क्रमशः प्रतिविन्ध्य सुतसोम श्रुतकर्मा शतानीक और श्रुतसेन पैदा हुए हैं। इन पाँचों को आप देख लीजिये। द्रौपदी ने भरी सभा में मेरी हँसी उड़ाकर मेरे हृदयको जलाया है उसी के इन पाँचों पुत्रों को युद्ध में मार कर आप उस का बदला चुकायें।

रात में सोते हुए इन पाँचों को अश्वत्थामा ने मार डाला।

ये सब के सब महारथी हैं। जो शास्त्र और शस्त्रविद्या दोनों में प्रवीण हैं और युद्ध में अकेले ही एक साथ दस हजार धनुर्धारी योद्धाओं का संचालन कर सकता है उस वीर पुरुष को महारथी कहते हैं ऐसे बहुत से महारथी पाण्डवसेनामें खड़े हैं।

गीता की पृष्ठभूमि में प्रथम अध्याय में अनेक वीरो का परिचय एवम युद्ध भूमि का वर्णन क्यों किया गया। तो हमे ज्ञात होना चाहिए कि हर योद्धा असामान्य किसी न किसी निपुणता से परिपूर्ण था, इसलिये जीवन के संघर्ष में हमारे साथ कौन है और कौन नही, क्या इस के भी कोई मायने होते है?

दुर्योधन राजसी-तामसी वृति का व्यक्तित्व था, अतः उस को समझना और जानना भी गीता में जरूरी था, जब कि अर्जुन सात्विक-राजसी प्रवृति का व्यक्तित्व था। अतः दोनो युद्ध को किस प्रकार देखते है, इस को समझे बिना हम गीता को नही समझ सकते।

द्रोणाचार्य के मन में पाण्डवों के प्रति द्वेष पैदा करने और युद्ध के लिये जोश दिलाने के लिये दुर्योधन ने पाण्डवसेना की विशेषता बतायी। दुर्योधन के मन में विचार आया कि द्रोणाचार्य पाण्डवों के पक्षपाती हैं ही अतः वे पाण्डवसेना की महत्ता सुनकर मेरे को यह कह सकते हैं कि जब पाण्डवों की सेना में इतनी विशेषता है तो उन के साथ तू सन्धि क्यों नहीं कर लेता ऐसा विचार आते ही दुर्योधन आगे के तीन श्लोकों में अपनी सेना की विशेषता बताता है।

।। हरि ॐ तत सत।। 01.4-6।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.7॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥

"asmākaṁ tu viśiṣṭā ye,
tān nibodha dvijottama..I
nāyakā mama sainyasya,
saṁjñārthaṁ tān bravīmi te"..II

भावार्थ :

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हमारी तरफ़ के भी उन विशेष शक्तिशाली योद्धाओं को भी जान लीजिये और आप की जानकारी के लिये मेरी सेना के उन योद्धाओं के बारे में बतलाता हूँ॥ ७॥

Meaning:

O twice-born Drona, now I would like to bring to your attention to our competent warriors. Let me point you to some of my army's commanders.

Explanation:

Duryodhana continued his conversation with Drona in this verse. As is apparent from the text of the verse, he wanted to now talk to Drona about his army, having assessed the capabilities of the Pandava army.

Dronacharya was a teacher of military science and not really a warrior. However, he was on the battlefield as one of the commanders of the Kaurava army. An impudent Duryodhana even doubted the loyalty of his own preceptor. Cunning Duryodhana purposefully addressed his teacher as dwijottama (best amongst the twice-born, or Brahmins). His denigrating and vailed reminder for Dronacharya was that, if he did not display his valor in this battle, he would be considered a lowly Brahmin, who was only interested in the fine food and lavish lifestyle at the king's palace. A part from that Dwijottma used from Brahaman means to remind him as Bramin you are suppose to do work according to your varna of teaching and yagya - yajan but standing in war as warrior is beyond your varna dharma of brahaman.

Notice how each verse gives an indication of Duryodhana's state of mind. Initially, he saw the well-formed army of the Pandavas that was marching with a single vision, and began to worry that it may prove to be a formidable opponent. His worry prompted him to instigate Drona. Now in this verse Duryodhana's worry unleashed a condescending, mean attitude by calling Drona a "twice born". In Swami Ramdas Samaratha's Dasbodh, there is an entire chapter on signs exhibited by foolish people. According to him, anyone who insults his guru out of pride is considered a fool.

Twice-born usually refers to individuals in the brahman, kshatriya and vaishya classes. However, in this verse, this was a veiled insult because although Drona was a accomplished warrior, he was a brahmin by birth. Duryodhana wanted to imply that Drona, being a brahmin, would be soft on his disciples the Pandavas.In addition, use of the phrase "my army" also indicates that Duryodhana's ego was puffed up at this point.

Negative emotions like fear and worry, when allowed to simmer in the mind, tend to unleash the worst in us. Later, the Gita will go in great detail into how this happens.

।। हिंदी समीक्षा ।।

दुर्योधन द्रोणाचार्य से कहते है कि हे द्विजश्रेष्ठ ! जैसे पाण्डवों की सेना में श्रेष्ठ महारथी हैं ऐसे ही हमारी सेना में भी उनसे कम विशेषतावाले महारथी नहीं हैं प्रत्युत उन की सेना के महारथियों की अपेक्षा ज्यादा ही विशेषता रखनेवाले हैं। उन को भी आप समझ लीजिये। तीसरे श्लोक में पश्य और यहाँ निबोध क्रिया देने का तात्पर्य है कि पाण्डवों की सेना तो सामने खड़ी है इसलिये उस को देखने के लिये दुर्योधन पश्य (देखिये) क्रिया का प्रयोग करता है। परन्तु अपनी सेना सामने नहीं है अर्थात् अपनी सेना की तरफ द्रोणाचार्य की पीठ है इसलिये उस को देखने की बात न कह कर उस पर ध्यान देने के लिये दुर्योधन निबोध (ध्यान दीजिये) क्रिया का प्रयोग करता है।

मेरी सेना में भी जो विशिष्ट विशिष्ट सेनापति हैं, सेनानायक हैं, महारथी हैं मैं उन के नाम केवल आप को याद दिलाने के लिये आप की दृष्टि उधर खींचने के लिये ही कह रहा हूँ।

संज्ञार्थम् पद का तात्पर्य है कि हमारे बहुत से सेनानायक हैं उन के नाम मैं कहाँ तक कहूँ इसलिये मैं उन का केवल संकेतमात्र करता हूँ क्योंकि आप तो सब को जानते ही हैं।

इस श्लोक में दुर्योधन का ऐसा भाव प्रतीत होता है कि हमारा पक्ष किसी भी तरह कमजोर नहीं है। परन्तु राजनीति के अनुसार शत्रुपक्ष चाहे कितना ही कमजोर हो और अपना पक्ष चाहे कितना ही सबल हो ऐसी अवस्था में भी शत्रुपक्ष को कमजोर नहीं समझना चाहिये और अपने में उपेक्षा उदासीनता आदि की भावना किञ्चिन्मात्र भी नहीं आने देनी चाहिये। इसलिये सावधानी के लिये मैंने उन की सेना की बात कही और अब अपनी सेना की बात कहता हूँ।

द्रोणाचार्य को द्विजोत्तम कहकर सम्बोधित करते हुये दुर्योधन अपनी सेना के प्रमुख वीर योद्धाओं के नाम सुनाता है। द्विज का अर्थ शिक्षा और संस्कार से मनुष्य का पुनः जन्म, जो ब्राह्मण वर्ण में यज्ञोपित जनेऊ संस्कार से की जाती है। द्विजोत्तम संबोधन असामायिक है, जो गीता में अन्तःकरण की दो प्रवृतियों का संघर्ष है। जिस में द्वेत का आचरण ही द्रोण है। जब तक हम लेश मात्र भी आराध्य से अलग है, तब तक प्रकृति विद्यमान है और द्वेतभाव बना रहता है, इस का सर्वप्रथम द्वेत से जीतने की शिक्षा गुरु से ही मिलती है। जब तक चिंगारी न हो आग नही जलती, ऐसे जब तक हम गीता के एक दो श्लोक ही न पढे अर्थात धर्म की चर्चा न करे, हमारे अंदर ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित नही होती।

दुर्योधन द्वारा द्विजोत्तम कहना इस बात का भी प्रतीक है कि ब्राह्मण से अपेक्षा यज्ञ - यजन, शिक्षा देने और दान ग्रहण करने जैसे कार्य की है, किंतु यहां एक क्षत्रिय की भांति आप यदि युद्ध में खड़े है, तो क्षत्रिय धर्म को ध्यान में रखे।

एक कायर मनुष्य अंधेरे में अनुभव होने वाले भय को दूर करने के लिये सीटी बजाता है अथवा कुछ गुनगुनाने लगता है। दुर्योधन की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की थी। अपराधबोध से पीड़ित अत्याचारी दुर्योधन की मनस्थिति बिखर रही थी। यद्यपि उस की सेना सक्षम शूरवीरों से सुसज्जित थी तथापि शत्रुपक्ष के वीरों को देखकर उसे भय लग रहा था। अत द्रोणाचार्य के मुख से स्वयं को प्रोत्साहित करने वाले शब्दों को वह सुनना चाहता था। परन्तु जब वह आचार्य के पास पहुँचा तब वे शान्त और मौन रहे। इसलिये टूटती उत्साह को फिर से जुटाने के लिये वह अपनी सेना के प्रमुख योद्धाओं के नाम गिनाने लगता है।

यह स्वाभाविक है कि अपराध बोध के भार से दबा हुआ व्यक्ति नैतिक बल के अभाव में सम्भाषणादि की मर्यादा को भूलकर अत्यधिक बोलने लगता है। ऐसे मानसिक तनाव के समय व्यक्ति के वास्तविक संस्कार उजागर होते हैं। यहाँ दुर्योधन अपने गुरु को द्विजोत्तम कहकर सम्बोधित करता है। आन्तरिक ज्ञान के विकास के कारण ब्राह्मण को द्विज (दो बार जन्मा हुआ) कहा जाता है। माता के गर्भ से जन्म लेने पर मनुष्य संस्कारहीन होने के

कारण पशुतुल्य ही होता है। संस्कार एवं अध्ययन के द्वारा वह एक शिक्षित व सुसंस्कृत पुरुष बनता है। यह उस का दूसरा जन्म माना जाता है। यह द्विज शब्द का अर्थ है। द्रोणाचार्य ब्राह्मण कुल में जन्में थे और स्वभावत उन में हृदय की कोमलता आदि श्रेष्ठ गुण थे। पाण्डव सैन्य में उनके प्रिय शिष्य ही उपस्थित थे। यह सब जानकर चतुर किन्तु निर्लज्ज दुर्योधन को अपने गुरु की निष्पक्षता पर भी संदेह होने लगा था। जब हमारे उद्देश्य पापपूर्ण और कुटिलता से भरे होते हैं तब हम अपने समीपस्थ और अधीनस्थ लोगों में भी उन्हीं अवगुणों की कल्पना करने लगते हैं।

किसी को कम आंकना, किंतु जब अपने विरुद्ध सुसज्जित पांडव सेना उत्साह से पूर्ण देखना, दुर्योधन के लिए भय का कारण बना। अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए वह आशंका से युक्त द्रोणाचार्य से येनकेन अपने पक्ष में प्रोत्साहन की बात सुनना चाहता था क्योंकि उसे मालूम था कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि अनेक लोग उस के पक्ष में सिर्फ हस्तिनापुर के सिंहासन से बंधे होने से खड़े है, जब की पांडव के पक्ष में लोग, नैतिकता के कारण उन के साथ है।

दुर्योधन के संवाद एक सांसारिक राजसी-तामसी प्रवृति के व्यक्ति के है, जिन्हें गीता में शुरुवात में क्यों बताया गया, यह हम आगे संवाद की समाप्ति पर चर्चा करेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.07।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.8॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

"bhavān bhīṣmaś ca karṇaś ca,
kṛpaś ca samitiṁ-jayaḥ..I
aśvatthāmā vikarṇaś ca,
saumadattis tathaiva ca"..II

भावार्थ :

मेरी सेना में स्वयं आप-द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा जैसे योद्धा है, जो सदैव युद्ध में विजयी रहे हैं॥ ८॥

Meaning:

We have victorious warriors such as yourself, Bheeshma, Kripaachaarya and Karna on our side. Similarly, we also have Ashvaththaama, Vikarna and Bhoorishrava.

Explanation:

Having conducted an assessment of the warriors on the Pandava's side, Duryodhana began to conduct a similar assessment of his side.

Throughout the last few verses we were observing Duryodhana's emotional state. After having lobbed an insult at Drona, and not having heard a response back, Duryodhana now became scared that he had angered his army's main commander and his teacher. So he wanted to say something to appease Drona. Hence he began his assessment of powerful warriors by putting Drona first in this verse. He gives the list. First topmost in the list is bhavan, is not the name of a warrior. Bhavan means Your Honour, You. First Duryodhana lists Droṇa. If Droṇa feels insulted, it is finished. You are the first one.

Thereafter he introduced personalities Bhishma, Karna, Kripa, Asvatthama, Vikarna and the son of Somadatta called Bhurisrava, who are always victorious in battle.

He named kripacharya after karna, so to please kripacharya is he called after his name samitinjayah. samitinjayaḥ is not a name of a person is an adjective to kripacharya. samitinjayaḥ kripacharya, the one who is ever victorious in a war.
Undefeatable person is called samitiñjayaḥ. Samithihi means Yuddhah. Jayah means victorious

What does this tell us about Duryodhana's personality? Some times we tend to view people as either good or evil, and by that logic Duryodhana would be considered evil. But this temporary outpouring of reverence for his teacher shows that Duryodhana had some good qualities in him, although in lower proportion to his bad qualities.

Later the Gita will provide a detailed explanation of types of qualities that all individuals have. At this point, let us consider that all individuals have a mix of three qualities or tendencies: a tendency that draws us towards inertia, another that draws us to action, and another that draws us to equanimity or harmony. Usually, one or two tendencies tend to dominate the other in us.

You may know some people who have a tendency to be lazy and sleep all the time. Or there may be someone who cannot rest and has to keep doing something or the other. Or, there are some who do what's needed to run their lives and are not lazy, and also deal with severe setbacks and challenges while managing to stay calm, collected and even-keel.

What do we think is our most dominant tendency? Are there external factors that change it temporarily? For example, if you find that your most dominant tendency is towards action, are there factors that make you stable and peaceful?

।। हिंदी समीक्षा ।।

जरूरी नहीं प्रत्येक बुरे व्यक्ति में बुराइयां ही हो, उस में कुछ अच्छे गुण भी होते है। उस के अच्छे गुणों से कुछ लोग उस को पसंद भी करते है। कर्ण का जब पांडव अपमान कर रहे थे, उसे सम्मान दे कर अंग देश का राजा बना कर उस ने उस का दिल जीत लिया था।

दुर्योधन का अपनी सेना के महारथी का परिचय देना मुख्यतः अपने आप को संतुलित करना था। इसलिये वह कहते है। पूर्व में द्विज कह कर द्रोणाचार्य को अपमानित करने की भूल समझ कर इस बार सेना में सर्वप्रथम द्रोणाचार्य जी का नाम सब से श्रेष्ठ योद्धा कह कर उस ने अपनी भूल सुधार ली।

आप और पितामह भीष्म दोनों ही बहुत विशेष पुरुष हैं। आप दोनों के समकक्ष संसार में तीसरा कोई भी नहीं है।

कर्ण तो बहुत ही शूरवीर है। मुझे तो ऐसा विश्वास है कि वह अकेला ही पाण्डवसेना पर विजय प्राप्त कर सकता है।

कृपाचार्य की तो बात ही क्या है वे तो अजेय योद्धा है। कृपाचार्य जी चिरंजीवी भी थे।

यद्यपि यहाँ द्रोणाचार्य और भीष्म के बाद ही दुर्योधन को कृपाचार्य का नाम लेना चाहिये था परन्तु दुर्योधन को कर्ण पर जितना विश्वास था उतना कृपाचार्य पर नहीं था। इसलिये कर्ण का नाम तो भीतर से बीच में ही निकल पड़ा। द्रोणाचार्य और भीष्म कहीं कृपाचार्य का अपमान न समझ लें इसलिये दुर्योधन कृपाचार्य को संग्राम विजयी विशेषण देकर उन को प्रसन्न करना चाहता है।

अश्वत्थामा ये भी चिरंजीवी हैं और आप के ही पुत्र हैं। ये बड़े ही शूरवीर हैं। इन्होंने आप से ही अस्त्रशस्त्र की विद्या सीखी है।

आप यह न समझें कि केवल पाण्डव ही धर्मात्मा हैं हमारे पक्ष में भी मेरा भाई विकर्ण बड़ा धर्मात्मा और शूरवीर है। ऐसे ही हमारे प्रपितामह शान्तनु के भाई बाह्लीक के पौत्र तथा सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा भी बड़े धर्मात्मा हैं। इन्होंने बड़ी बड़ी दक्षिणावाले अनेक यज्ञ किये हैं। ये बड़े शूरवीर और महारथी हैं।

यद्यपि कुछ क्षणों के लिये अपराध की भावना एवं मानसिक उतेंजना के कारण दुर्योधन का विवेक लुप्त हो गया था किन्तु एक तानाशाह की भाँति उसने शीघ्र ही अपने आप को संयमित कर लिया। सम्भवत द्रोणाचार्य के उत्साह रहित मौन से वह समझ गया कि उन्हें द्विज कहकर सम्बोधित करके वह शील की मर्यादा का उल्लंघन कर रहा था।

पांडव की सेना एक मत पर युद्ध कर रही थी जब की दुर्योधन की सेना शासन के प्रति समर्पित होने से दुर्योधन के पक्ष में खड़ी थी।

दुर्योधन की जिद्द युद्ध मे बदल गयी और जब उद्देश्य गलत हो आत्मविस्वास भी कम होता है और व्यक्ति अपने साथ खड़े लोगो के प्रति सशंकित रहता है।

दुर्योधन की यही चिंता अब द्रोणाचार्य के प्रति संवाद से प्रकट हो रही है। उसे मालूम है कि उस के साथ खड़े योद्धा पांडव के प्रति द्वेष नही रखते।

जब कभी आप जिद में किसी को साथ चलने को कहते है, तो वह मन मसोस कर आप के साथ चल तो रहा होता है किंतु मानसिक रूप से आप के साथ नही होता। इतने कौरव वीरो की स्थिति कुछ ऐसी ही है, जब कि पांडव की सेना में सम्मलित लोग बिना किसी दवाब के पांडव को न्याय दिलाने के खड़े है। उत्साह और मजबूरी की दो सेनाओ के बीच दुर्योधन इस युद्ध को अपने पक्ष में लाने के क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.08 ।।

।। स्वामी अड़गड़ानंद जी ।।विशेष 01.08 ।।

पूज्य स्वामी अड़गड़ानंद जी, लेखक यथार्थ गीता ने अपनी पुस्तक में दुर्योधन की तुलना विजातीय प्रवृति से की है, अर्थात जो प्रवृति परमात्मा के साथ नही है। तब उस की सेना के महारथी कौन हो सकते है।

1. द्वेत के आचरण के प्रतीक द्रोणाचार्य है।

2. भीष्म को कभी नही मिटने वाला भ्रम कहा गया है। यह मनुष्य का मैं रूपी विकार है जो युद्ध के अंत तक भी जीवित रहता है।

3. कर्म के स्वरूप के कर्ण है, जिस के फल की आशा हर मनुष्य को रहती है। दुर्योधन को भी कर्ण से ही ज्यादा उम्मीदे थी।

4. साधक जब साधना में रत रहता है तो वह उन अविश्विनीय सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है जिसे वह भी नही जानता। इस का लाभ उन लोगो को मिलता है जो उस के संपर्क में रहते है। इसलिये कृपा का आचरण करने वाले कृपाचार्य है। किंतु जिस दिन साधक अपने अहम में किसी पर कृपा करने का विचार करे तो भी उस की सिद्धिया नष्ट हो जाती है। आप क्या है, इस का कोई भी प्रभाव आप पर नही होना चाहिये।

5. अश्वत्थामा को आसक्ति का प्रतीक माना गया है, आसक्ति कभी नही मरती, यही अश्वत्थामा भी अमर है। द्वेत का आचरण स्वरूप में द्रोणाचार्य है, आसक्ति का जन्मदाता भी द्वेत भाव ही है। इसलिये आसक्ति ही जीव की मृत्यु का कारण बनती है।

6. विकर्ण को विकल्प स्वरूप बताया गया है। किसी को कार्य करते समय जो अनेक भाव एवम विकल्प उतपन्न होते है, यह विकल्प मनुष्य को भ्रमित करते है और मनुष्य कभी एक विकल्प को चुनता है और जैसे ही कठनाई आती है, तो अन्य विकल्प को चुन लेता है। कभी सिद्धिया, तो कभी कर्म फल तो कभी मोक्ष। इसी में उलझ कर रह जाता है। विकर्ण के रूप में निष्काम कर्म का मार्ग ही श्रेष्ठ है।

7. अंत मे भूरी भूरी प्रशंसा का स्वरूप भूरिश्रवा है। साधना या एकचित हो कर कर्म करते रहने से ज्ञान में वृद्धि होती है एवम साधक का स्तर उठने लगता है। जिस से समाज, परिवार एवम कार्यस्थल में व्यक्ति की भूरि भूरि प्रशंसा होने लगती है। प्रशंसा किसे बुरी लगती है, यही प्रशंसा व्यक्ति को गर्वोक्त बना देती है। प्रशंसा पा कर भी व्यक्ति सामान्य रूप में यदि कर्म करता रहे तो सफल होगा किन्तु इस मे बहक गया तो निश्चय ही पतन के मार्ग पर चल देगा।

महाभारत के युद्ध को कुछ लेखकों ने अंतर्निहित संग्राम के रूप ने अच्छी एवम बुरी प्रवृतियों का संघर्ष बताया है। अतः यह समीक्षा उसी स्वरूप के एक हिस्सा ही है। मेरे विचार से यह विभिन्न व्यक्तित्व के, विभिन्न कर्तव्य धर्म के, विभिन्न आचरण के महापुरुषों के युद्ध की इतिहासिक घटना है, जिसे सर्वश्रेष्ठ चिंतक, लेखक, विचारक एवम आचरण का पालन करने वाले महृषि व्यास जी लिपिबद्ध इसप्रकार किया है की इसमें संसार का समस्त ज्ञान सम्मलित हो जाये। गीता भीष्म पर्व का एक छोटा सा हिस्सा है, जिस में समस्त वेदों एवम उपनिषदों को सार के रूप में कहा गया है। इतिहास में प्रत्येक पात्र का अपना ही व्यक्तित्व होता है। इसलिए रामायण या महाभारत जैसे इतिहासिक ग्रंथो के पात्रों में तत्व दर्शन को खोजना भी उन लेखकों के चिंतन का विषय हो सकता है, किंतु इस से इतिहास को जो लोग मिथक या काल्पनिक मानते है, वह गलत है।

इसलिये यह विचार भी विचारणीय एवम समझने योग्य ही है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1.08 ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.9॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥

"anye ca bahavaḥ śūrā,
mad-arthe tyakta-jīvitāḥ..I
nānā-śastra-praharaṇāḥ,
sarve yuddha-viśāradāḥ"..II

भावार्थ :

ऐसे अन्य अनेक शूरवीर भी है जो मेरे लिये अपने जीवन का बलिदान देने के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित है और यह सभी युद्ध-विधा में निपुण है॥ ९॥

Meaning:

In addition to our commanders, we also have several other brave warriors who have vowed to give up their life for me. These warriors are well versed in deploying weapons, and are proficient in the art of battle.

Explanation:

Not only previously listed people, but there are more on our side. There are many other powerful ones and out of respect for me, to support me, they have renounced their lives and they have kept their own lives at stakes and joined this army. Even though they are not directly involved in this war, they have come to support me. Like in the First World War and Second World War, the actual war is between two countries only but the others joined to support. In the same way, India had many kingdoms and all these kings had divided themselves into two groups and they had joined either Pāndavas or Kauravas therefore it was something mini world war itself. They have renounced their life for my sake And they are not ordinary people, they have got varieties of weapons and varieties of missiles. praharaṇam, means missiles.

Duryodhana naively tried to impress Drona by glorifying his army, as well as his weapons. Astra denotes weapons that are thrown, and shastra denotes weapons that are hand-held. His ego resurfaced again, which is evidenced by his self-aggrandizing statements like "they will give up their life for me". He probably was trying to convince (or delude) himself that his army is poised to win the battle.

The tendency of the ego to consider something "mine" is called mamataa in Sanskrit. Mamataa literally means "mine-making" or "mine-ness". This is yet another means for the ego to strengthen itself through possessions.

Here's an interesting exercise. Take something that you know for sure is "yours". Now deeply examine it. Is it really yours? For example, say you own a house. On what basis do you consider it yours? Most probably, it's a legal document that the government issues to you. Well, what happens if that government no longer exists Or, more likely, what happens if the government grabs that land from you because it possesses some precious natural resources, Is the relationship between you and the house "real"?

।। हिंदी समीक्षा ।।

मैंने अभी तक अपनी सेना के जितने शूरवीरों के नाम लिये हैं उन के अतिरिक्त भी हमारी सेना में बाह्लीक, शल्य, भगदत्त, जयद्रथ आदि बहुत से शूरवीर महारथी हैं जो मेरी भलाई के लिये मेरी ओर से लड़ने के लिये अपने जीने

की इच्छा का त्याग कर के यहाँ आये हैं। वे मेरी विजय के लिये मर भले ही जायँ पर युद्ध से हटेंगे नहीं। उन की मैं आप के सामने क्या कृतज्ञता प्रकट करूँ । ये सभी लोग हाथ में रख कर प्रहार करने वाले तलवार गदा त्रिशूल आदि नाना प्रकार के शस्त्रों की कला में निपुण हैं और हाथ से फेंक कर प्रहार करनेवाले बाण तोमर शक्ति आदि अस्त्रों की कला में भी निपुण हैं। युद्ध कैसे करना चाहिये किस तरह से किस पैंतरे से और किस युक्ति से युद्ध करना चाहिये सेना को किस तरह खड़ी करनी चाहिये आदि युद्ध की कलाओं में भी ये बड़े निपुण हैं कुशल हैं।

महाभारत में युद्ध कौरव और पांडव के मध्य था किंतु इस युद्ध में सभी छोटे - बड़े राज्य भी कौरव या पांडव के पक्ष में युद्ध लड़ने आ गए थे। यह एक विश्व युद्ध के समान था जिस में अनेक योद्धा अपने घातक हथियारों के युद्ध में सम्मिलित था। दुयोधन भ्रमित है कि यह उस के अपने प्राण निछावर करने वाले योद्धा और सेना है, जबकि उस की सेना में सम्मिलित सेना हस्तिनापुर की संधि और व्यक्तिगत कारणों से उस के पक्ष में खड़ी थी।

कुछ लेखक मानते है कि युद्ध मे भय से ग्रस्त दुर्योधन का अहम इतना बड़ा था कि जब द्रोणाचार्य द्वारा कोई प्रतिक्रिया नही दिखाई गई तो उन्हें प्रभावित करने के उसने सेना को उस के लिए समर्पित बता कर अपनी बताना शुरू किया कि यह मेरी सेना। किन्तु दुर्योधन एक वीर योद्धा था, पर्याप्त संस्कार के अभाव में, अपने मामा शकुनि की कुटिल चालो एवम धृष्टराष्ट्र की राज्य की लालसा ने उसे दंभी, लोभी एवम ईर्ष्यालु बना दिया था। उसे लगता था कि उस के साथ अनेक महारथी, राज्य, सेना का सहयोग है, इसलिये यह राज्य विहीन पांडव उस का कुछ नही बिगाड़ सकते, किन्तु अपनी विशाल सेना के विरुद्ध पांडव की सेना को देख कर वह समझ गया कि उस का आंकलन गलत था। इसलिये वह दोनों पक्षो की तुलना द्वारा स्वयं को आश्वस्त करना चाहता था कि वह इन्हें जीत लेगा।

किन्तु यह मेरा है, कितना सत्य है। जो हमारे साथ चल रहा है, वह आप का है या नही, यह तो आगे हम पढ़ेगे परंतु व्यक्ति यदि लोभ, स्वार्थ एवम अहंकार में डूबा रहे तो इस भ्रम से बाहर नही आ सकता। क्या हम इस महत्वाकांक्षा के साथ नही जीते। मेरा घर, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरी कार, मेरे दोस्त आदि आदि। जीवन में किसी कार्य करते समय जब हमारे साथ लोग जुड़ जाते है तो यह अहम जागना कि वे मेरे कारण जुड़े है, सब से बड़ा भ्रम होता है। प्रत्येक व्यक्ति जो आप के साथ जुड़ा है उस का अपना ही उद्देश्य और कारण होता है। इस का एक उदाहरण व्हाट्सएप ग्रुप है जिस में अनेक लोग जुड़ जाते है, वह यदि आप के व्हाट्सएप ग्रुप से जुड़े है तो उस का कारण आप ही है, जरूरी नहीं, उन के जुड़ने का कारण कुछ और भी हो सकता है।

दुर्योधन की बातें सुनकर जब द्रोणाचार्य कुछ भी नहीं बोले तब अपनी चालाकी न चल सकने से दुर्योधन के मन में क्या विचार आता है इस को सञ्जय आगे के श्लोक में कहते हैं।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.09।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.10॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥

"aparyāptaṁ tad asmākaṁ,
balaṁ bhīṣmābhirakṣitam..I
paryāptaṁ tv idam eteṣāṁ,
balaṁ bhīmābhirakṣitam"..II

भावार्थ :

इस प्रकार भीष्म पितामह द्वारा अच्छी प्रकार से संरक्षित हमारी सेना की शक्ति असीमित है, किन्तु भीम द्वारा अच्छी प्रकार से संरक्षित होकर भी पांडवों की सेना की शक्ति सीमित है॥ १०॥

Meaning:

Whereas our army, defended by Bheeshma's strength, is infinitely capable of victory, the Pandava army defended by Bheema's strength, seems limited.

Explanation:

The commander -in-chief of the Kaurava army was Grandsire Bheeshma. Apart from being an exceptional warrior, he had an extraordinary boon. He could choose the time of his death, this meant he was practically invincible. Duryodhana felt that under Bheeshma's command their army was undefeatable. Whereas, the Pandava army was secured by Duryodhana's sworn enemy, Bheema. Hence, he started comparing his Grandfather Bheeshma's strength with his cousin Bheema.

Vinaash kale vipreet buddhi as the proverb goes, which means that when the end draws near, egoistic people indulge in vainglory instead of being humble in evaluating their situation. So having enumerated the important people of both the armies, now Duryodhana wants to find out the relative strength, who is superior and who is inferior. And according to Duryodhana's judgement, Who is superior? He says Pandava sainyam is superior and our kaurava sainyam is inferior. This is his judgement indicating he is now tremendously frightened and therefore he goes nearer to Droṇa and he says that means insufficient. It is weaker. It is incapable of overpowering the Pandava sainyam.

Aparyāpatam meaning inferior, insufficient. Even though most important warrior in our troupe is bhiṣma it is protected by bhiṣma, and bhiṣma is most powerful one; still I feel that we are weaker. And not only that, army of these Pandavas is sufficient. It is too powerful to overwhelm us, to defeat us. even though it is protected by Bhima only, even though bhima is inferior to bhiṣma, but still I feel that their army is more powerful.

Bheeshma was also aware that in this holy war, along with all the great warriors of the world the Supreme Lord Krishna Himself was present. Lord Krishna was with the Pandavas, which meant Dharma was on their side, and no power in the entire universe could make the side of Adharma win. Bheeshma joins the army of kaurav being binding himself with Hasthinapur through his oath which he had taken to fulfill his father's pleasure for his fathar's marriage with fisher's daughter Satyawati.

Duryodhana continued to boast about his army in this final comment to Drona. Note that Drona did not reply to any of Duryodhana's statements at any point in the conversation. His silence indicated either anger, disappointment or knowing the inevitable that his army was doomed to failure.

If you measure Duryodhana's comments, they tend to become increasingly arrogant and hyperbolic throughout the conversation. Anytime you have somebody making hyperbolic statements praising themselves, it usually indicates an underlying insecurity.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अधर्म अन्याय के कारण दुर्योधन के मन में भय एवम आत्मविश्वास में कमी होने से वह अपनी सेना के विषय में सोचता है कि हमारी सेना बड़ी होने पर भी अर्थात् पाण्डवों की अपेक्षा चार अक्षौहिणी अधिक होने पर भी पाण्डवों पर विजय प्राप्त करने में है तो असमर्थ ही। कारण कि हमारी सेना में मतभेद है। उस में इतनी एकता (संगठन) निर्भयता निःसंकोचता नहीं है जितनी कि पाण्डवों की सेना में है। हमारी सेना के मुख्य संरक्षक पितामह भीष्म उभय पक्षपाती हैं अर्थात् उन के भीतर कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओं का पक्ष है। वे कृष्ण के बड़े भक्त हैं। उन के हृदय में युधिष्ठिर का बड़ा आदर है। अर्जुन पर भी उन का बड़ा स्नेह है। इसलिये वे हमारे पक्ष में रहते हुए भी भीतर से पाण्डवों का भला चाहते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा से हस्तिनापुर की रक्षा के लिए प्रतिबंध है इसलिए वे कौरव के साथ है। वे भीष्म ही हमारी सेना के मुख्य सेनापति हैं। ऐसी दशा में हमारी सेना पाण्डवों के मुकाबले में कैसे समर्थ हो सकती है, नहीं हो सकती। किंतु बोलते वक्त वह यही दर्शाता है कि भीष्म जैसे अजेय योद्धा के उस के पक्ष में होने से उस के जीत की संभावना असीमित अर्थात निश्चित है।

परन्तु यह जो पाण्डवों की सेना है यह हमारे पर विजय करने में समर्थ है। कारण कि इन की सेना में मतभेद नहीं है प्रत्युत सभी एकमत होकर संगठित हैं। इन की सेना का संरक्षक बलवान् भीमसेन है जो कि बचपन से ही मेरे को हराता आया है। यह अकेला ही मेरे सहित सौ भाइयों को मारने की प्रतिज्ञा कर चुका है अर्थात् यह हमारा नाश करने पर तुला हुआ है इसका शरीर वज्र के समान मजबूत है। ऐसा यह भीमसेन पाण्डवों की सेना का संरक्षक है इसलिये यह सेना वास्तव में समर्थ है, पूर्ण है। फिर भी उन के जितने की संभावना बहुत सीमित है।

यहाँ एक शङ्का हो सकती है कि दुर्योधन ने अपनी सेना के संरक्षक के लिये भीष्म जी का नाम लिया जो कि सेनापति के पद पर नियुक्त हैं। परन्तु पाण्डव सेना के संरक्षक के लिये भीमसेन का नाम लिया जो कि सेनापति नहीं हैं। इस का समाधान यह है कि दुर्योधन इस समय सेनापतियों की बात नहीं सोच रहा है किन्तु दोनों सेनाओं की शक्ति के विषय में सोच रहा है कि किस सेना की शक्ति अधिक है दुर्योधन पर आरम्भ से ही भीमसेन की शक्ति का बलवत्ता का अधिक प्रभाव पड़ा हुआ है। अतः वह पाण्डवसेना के संरक्षक के लिये भीमसेन का ही नाम लेता है।

अर्जुन कौरवसेना को देखकर किसी के पास न जाकर हाथ में धनुष उठाते हैं, पर दुर्योधन पाण्डव सेना को देखकर द्रोणाचार्य के पास जाता है और उन से पाण्डवों की व्यूहरचनायुक्त सेना को देखने के लिये कहता है। इस से सिद्ध होता है कि दुर्योधन के हृदय में भय बैठा हुआ है। भीतर में भय होने पर भी वह चालाकी से द्रोणाचार्य को प्रसन्न करना चाहता है उन को पाण्डवों के विरुद्ध उकसाना चाहता है। कारण कि दुर्योधन के हृदय में अधर्म है अन्याय है पाप है। अन्यायी पापी व्यक्ति कभी निर्भय और सुखशान्ति से नहीं रह सकता यह नियम है। द्रोणाचार्य द्वारा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करने से दुर्योधन अपना ध्यान भीष्म की ओर करता है।

अब दुर्योधन पितामह भीष्म को प्रसन्न करने के लिये अपनी सेना के सभी महारथियों से कहता है।

व्यक्तिगत जीवन मे जब हम किसी भी कार्य का बीड़ा उठाते है और स्वयं करने में असमर्थ होते है तो हमारे सामने सिवाय निर्भरता के कुछ नही होता। अतः हम उस कार्य को कर सकने के सामर्थ्य रखने वाले को प्रसन्न रखने की चेष्ठा करते है। दुर्योधन को द्रोणाचार्य द्वारा कोई प्रतिक्रिया न देना और भीष्म की ओर मुड़ना उस के आन्तरिक भय को प्रदर्शित करता है जिस को समर्थन का सबल चाहिए।

गीता के प्रारम्भ में दुर्योधन का चरित्र चित्रण करने का क्या उद्देश्य होगा यह हम बाद में पढ़ते है, किन्तु यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति लोभ, कपट एवम दुष्ट प्रवृति का होता है, उस की हिम्मत उतनी ही क्षीण होती है और बहुदा थोड़े से विरोध में ही वह बेचैन हो जाता है। दुर्योधन बचपन से परिवार पर निर्भर रहा। उस ने शास्त्र विद्या सीखी किन्तु कभी संघर्ष नही किया। जब कि पांडव संघर्षो से तप कर बाहर आये। इसलिये युद्ध भूमि में भी वह अपने से अधिक युद्ध भीष्म, द्रोण एवम कर्ण के समान योद्धाओ के भरोसे कर रहा है।

व्यवहारिक जीवन मे यदि हम अपनी संतानों को अधिक संरक्षण दे कर पालते है, तो फिर वह चाहे कितनी भी योग्यता प्राप्त कर ले, संघर्ष के समय उन के आत्मविश्वास हीनता में जाने का भय रहता ही है। इसलिये बच्चों को अत्यधिक संरक्षण नही देना चाहिये, उन्हे उच्च संस्कार देना चाहिए जिस से वह सभी परिस्थितियों से लड़ना सीख सके।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.10 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.11॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥

"ayaneṣu ca sarveṣu,
yathā-bhāgam avasthitāḥ..I
bhīṣmam evābhirakṣantu,
bhavantaḥ sarva eva hi"..II

भावार्थ :

अत: सभी मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थित रहकर आप सभी निश्चित रूप से भीष्म पितामह की सभी ओर से सहायता करें॥ ११॥

Meaning:

All of you should completely protect Bheeshma at all points, situated in each of your various formations.

Explanation:

Duryodhana beheld Bheeshma's unassailability as an advantage and wanted to use it as strength and inspiration for his army. Duryodhana instructed his main warriors to ensure Bheesma's safety since the Mahabharata war was about to begin.

The instruction was given by remaining in your own allotted strategic points which are known as ayanam.

Ayanam is a technical word used in warfare and it stands for any strategic position in which a powerful warrior is placed, especially when different व्युहास vyuhās or different arrangements are made; certain positions are there; eastern, western, northern, southern, etc. Strategic points are called ayanam. And in each of these strategic points, a powerful warrior will have to be there and he says whatever happens, you do not leave those place. Like any game, In cricket also, there are for a particular bowler, there is a strategic point. Slip, On, off, etc. Silly point.

Let's do a quick recap. The first chapter opened with Dhristrashtra asking Sanjaya to elaborate on the progress of the war, and that led to Duryodhana's monologue to Drona. After the statement Duryodhana makes in the current verse, he no longer has a "speaking part" in the Gita anywhere.

After this verse, we will encounter a series of verses that get us closer to the start of the battle, and closer to the core of the Gita.

॥ हिंदी समीक्षा ॥

इतने समय निरन्तर अकेले ही बोलने और उभय पक्ष की सार्मथ्य को तौलने के पश्चात युद्धतत्पर दुर्योधन में स्थित राजा अपने मन की सघन निराशा के मेघखण्डों को भेदकर सेना को आदेश देना प्रारम्भ करता है। उसका आदेश है कि सभी योद्धा एवं नायक स्वस्थान पर रहकर अनुशासनपूर्वक युद्ध करें और साथ ही भीष्म पितामह को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करें। उसे इस बात की आशंका है कि सुदूर राज्यों से आये हुये राजा एवं जनजातियों के नायक यदि इधर उधर बिखर गये तो विजय मिलना कठिन है। संगठित रूप से सब मोर्चों पर एक ही समय आक्रमण करना किसी भी सेना की सफलता का मेरुदण्ड है। इसलिये एक सही प्रकार की रणनीति अपनाते हुये वह सबको आदेश देता है कि विभिन्न स्थानों पर रहते हुये भी सब भीष्माचार्य का रक्षण करें।

द्रोणाचार्य के द्वारा कुछ भी न बोलने के कारण दुर्योधन का मानसिक उत्साह भङ्ग हुआ देख कर उसके प्रति भीष्मजी के किये हुए स्नेहसौहार्द की बात सञ्जय आगे के श्लोक में प्रकट करते हैं। गीता के प्रारंभ में विभिन्न चरित्र के चित्रण के लिए, दुर्योधन को माध्यम बनाया गया है, यही हमे अंत तक याद रखना है।

यहां मुख्य बात दुर्योधन की मानसिक स्थिति एवम उस के दौरान किये संवादों की है कि किस प्रकार एक अहम, अहंकार एवम लोभ में डूबा व्यक्ति अपने साथ खड़े लोगो को विषम परिस्थिति पर ला कर खड़ा कर देता और उन से अपनी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिये जोर देता है। दुर्योधन की हरकत एक युद्ध भूमि के योद्धा की नही थी, आगे अर्जुन से प्रवेश से यह विभिन्नता हम जान पाएंगे। गीता के प्रमुख उद्देश्य पूर्ण ज्ञान की और बढ़ते हुए गीता के अध्याय में दुर्योधन के इतने ही संवाद है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.11।।

।। चरित्र चित्रण ।। विशेष – 01.11 ।।

गीता का प्रारम्भ धृष्टराष्ट्र के संवाद के साथ किया गया। धृष्टराष्ट्र न केवल आंखों से अंधा था, वरन पुत्र मोह, राज्य के लोभ में अन्तःकरण से भी अंधा था। ऐसा कहना बेमानी होगा कि उसे ज्ञान नही था, किन्तु जब ज्ञान स्वार्थ, लोभ, मोह एवम लालसा में घिर जाए तो ऐसे व्यक्ति को कोई कितना भी समझा ले, वह अपनी जिद नही छोड़ता। इस के लिये चाहे वह सम्पूर्ण ही नष्ट क्यों न हो जाये। गीता का पूरा ज्ञान संजय द्वारा धृष्टराष्ट्र को दे कर महृषि व्यास ने यही बात कहने की चेष्टा की है। रावण का भी यही हश्र उस के अहंकार, मद और काम वासना के कारण था। गीता जैसा ग्रंथ जब लोभ, मोह, परलोक सुधारने, अहम या तिस्कृत भाव से पढ़ा जाए, तो उस की उपयोगिता भी सिद्ध नही होती। ज्ञान के अभाव में गीता पढ़ते है, इस का भी अहंकार अपने को अंधकार में धकलेने के समान है।

इस के बाद दुर्योधन पर गीता में संवाद दिए गए, यह आज के युग मे सांसारिक सुख सुविधाओं में संस्कारों से हीन मनुष्य का चित्रण है, जो हमेशा अपने लाभ की सोचता है। उस के साथ उस के अहसास में दबे कुछ बुद्धिजीवी जैसे भीष्म, द्रोण एवम कर्ण आदि भी होते है, जो अपने ही नियमो के अंतर्गत उस का बिना सही या गलत विचार, अपने को उस का साथ देने के लिये मजबूर समझते है। सांसारिकता में फसे दुर्योधन जैसे लोग

अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी भी हद्द तक जा सकते है। इस के लिये रिश्ते-नाते, प्रेम व्यवहार, मान-सम्मान, अचार,-विचार का कोई महत्व है तो कार्य सिद्धि तक। यदि कार्य सिद्ध नही होता तो यह लोग किसी भी किस्म का लोक लिहाज की परवाह करे, उस का अपमान भी कर देते है। यह स्वयं को अत्यंत बुद्धिमान, बलवान एवम समर्थ मानते है और होते भी है, इसलिये जो ज्ञान या सलाह इन के स्वार्थ की पूर्ति करे, उस को ही सुनते है। गीता का ज्ञान समाज मे स्वार्थ, लोभ एवम सांसारिकता से लिप्त लोग जिन के व्यापार, व्यवसाय, घर परिवार, सांसारिक सुख ही प्रमुख है, और इस के अतिरिक्त उन के पास समय भी नही रहता, के लिये भी नही है। यह कभी संतुष्ट भी नही होते, जितना भी मिले, इन्हे लगता है कि जो विपक्ष को मिला है, वह भी उसे मिले। उसे जो पर्याप्त है, वह भी अपर्याप्त ही लगता है।

यह व्यवहारिक इसलिए भी है जब कोई सत्य और धर्म के कोई लड़ाई लड़ता है तो जिन्हे हम ज्ञानी, समझदार, न्यायप्रिय या उत्तम पुरुष समझ कर सम्मान देते है और विश्वास करते है, वह ज्ञानी और सामर्थ्यशाली लोग भी अपने अपने कारणों और धर्म के कारण अन्यायी लोगो के साथ खड़े दिखते है। वे जानते है कि जिस के समर्थन में वो लोग खड़े है, वह गलत है किंतु उस के साथ होना वो लोग अपनी मजबूरी समझते है। क्या हमारे घर - परिवार, समाज - संस्था या देश - राजनीति में हम दिन प्रतिदिन नही देख रहे है। यही वह स्थिति है, जो उस व्यक्ति को विचलित कर देती है, जो उस के अन्याय के विरोध को अर्जुन की भांति निराश करती है। संसार में सत्य और असत्य की या न्याय और अन्याय की लड़ाई में वास्तविक लड़ाई तो स्वार्थ, मद, लोभ, मोह, ममता, कामना, अहम की होती है, वरना कौन नही जानता कि जिस का साथ वह दे रहा है, वह कितना सत्य या असत्य है।

यदि लड़ाई सत्य या असत्य की हो, या धर्म और अधर्म की, तो राम के विरुद्ध रावण के पास सेना नही होती, दुर्योधन के साथ भीष्म, द्रोण या कर्ण नही होते, मुगलों के साथ हिंदू राजा नही लड़े होते, अंग्रेजो के विरुद्ध उन के साथ भारतीय या हिंदुस्तानी नही खड़े होते और भ्रष्टाचार और हत्या आदि के अपराधिक वृत्तियों से जुड़े नेताओ के साथ समर्थको का हुजूम नही होता। सत्य की लड़ाई लड़ने वाले को स्वार्थ, मद, लोभ, मोह और अहम के विरुद्ध भी लड़ना होता है।

कौरव ही नही पांडव में भी इसी प्रकार के पात्र है जिन के जीवन का मायने कामना - आसक्ति या अहम। लोग राग - द्वेष को पालते है और सत्य और असत्य की विवेचना भी उसी आधार पर करते है। युद्ध भूमि गीता का प्रारंभ भी इस लिए किया जीवन के संघर्ष में आप के साथ और आप के विरुद्ध संसार के लगभग सभी तरह के चरित्र के लोग खड़े होंगे, किंतु वह सब अपने अपने स्वार्थ, लोभ, विवशता या धर्म के पालन के लिए होंगे। सत्य और न्याय की लड़ाई तो मनुष्य को अकेले ही परमात्मा पर श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, समर्पण और स्मरण के साथ ही लड़नी होगी।

फिर गीता का ज्ञान किस के लिए है, इस के लिये अर्जुन जैसा पात्र चुना गया। अर्जुन भगवान श्री कृष्ण को समर्पित थे, उन के अंदर श्रद्धा, प्रेम, विश्वास और समर्पण, बड़ो के प्रति सम्मान अच्छे संस्कार, मोह, ममता आदि थी। ज्ञानी भीष्म, कर्ण, द्रोण, युद्धिष्ठर, भीम या दुर्योधन और धृतराष्ट्र सभी थे, इन में कृष्ण के प्रति सम्मान, श्रद्धा भी कुछ में थी किंतु श्रद्धा, प्रेम, विश्वास के साथ समर्पण सिर्फ अर्जुन में था इसलिये उस ने पूरी सेना की बजाय युद्ध न करने एवम निहत्थे कृष्ण को चुना और इसी कारण गीता का ज्ञान उसी को दिया गया।

कहने के तत्पर्य यही है, गीता का अध्ययन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को परब्रह्म के प्रति स्मरण एवम समर्पण होना ही चाहिए एवम इसे अपनी समस्त शंकाओ के निवारण के साथ अध्ययन करना चाहिये। किसी को लगे कि वह पर्याप्त ज्ञानी है तो उस के यह अध्ययन व्यर्थ होगा क्योंकि अहम एवम अहंकार के साथ गीता पढ़ी या सुनी नही जा सकती।

गीता अध्याय 2 से शुरू होगी, किन्तु प्रथम अध्याय में विभिन्न पात्रो का परिचय एवम स्थिति हमे यह बताती है जीवन के संघर्ष में जब भी अवसाद का सामना कब, किस को और क्यों होता है। गीता के लिये सही पात्र कौन होता है। यदि हम चाहे भी उसे गीता के परब्रह्म का ज्ञान अपात्र को देना भी चाहे, तो भी वह बहुत जल्दी उकता कर वहाँ से कोई बहाना बना कर हट जाएगा। क्योंकि उन की रुचि सांसारिक क्रियाओ पर केंद्रित है।

आगे अर्जुन का पदार्पण है, इसलिये हमे उस के चरित्र का भी बारीकी से अध्ययन करना होगा। पांडव पक्ष के लोग एवम अन्य पांडव भी गीता को नही सुन सके, यद्यपि वह सभी धर्म के साथ थे, तो उस का कारण भी यही है कि उन में अर्जुन के समान भगवान श्री कृष्ण के प्रति समर्पण भाव नही था। अर्जुन में कृष्ण की सम्पूर्ण सेना और कृष्ण में श्री कृष्ण की चुना था, यही विश्वास के कारण भगवान ने उसे विषम परिस्थिति से उभारा, क्योंकि भगवान स्वयं कहते है जो मुझे भक्ति से पूजते है, उन्हें मैं ही पूर्ण दायित्व के साथ पालन करता हूँ और उन्हें बुद्धियोग भी प्रदान करता हूँ।

पुन:श्च - जो गीता का पाठ नित्य अध्ययन और मनन के उद्देश्य से करते है, उन को भगवान का योगक्षेम भी प्राप्त होता है, किंतु जो गीता का अध्ययन की लाभ की आशा से करते है, भगवान उन को भी निराश नहीं करते।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1.11 ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.12॥

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंख दध्मो प्रतापवान्॥

"tasya sañjanayan harṣaṁ,
kuru-vṛddhaḥ pitāmahaḥ..I
siṁha-nādaṁ vinadyoccaiḥ,
śaṅkhaṁ dadhmau pratāpavān"..II

भावार्थ :

तब कुरुवंश के वयोवृद्ध परम-प्रतापी पितामह भीष्म ने दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए सिंह-गर्जना के समान उच्च स्वर से शंख बजाया॥ १२॥

Meaning:

Then the valiant Bheeshma, elder of the Kuru dynasty, blew his conch loudly, a sound as mighty as the roar of a lion, delighting Duryodhana.

Explanation:

This is the first verse in a series of verses which indicate the beginning of the Mahabharata war. Traditionally, conches were blown to announce the start of the war.

Bhiṣmacarya made a huge roar of a lion to create, generate enthusiasm or confidence and thereafterwards Bhiṣmacarya did not want to delay the commencement of the war. Because, the more the delay is the more the butterfly in the stomach. You all know. The more the delay the more

the butterfly and therefore Bhiṣma decided to blow the conch signaling the commencement of the war.

Therefore it is like the whistle indicating the beginning. So therefore both the armies are important, but Bhīṣmā being the eldest in both the armies, therefore Bhiṣma decides to blow the conch first indicating their preparedness for the war.

This also conveyed to Duryodhana that Bheeshma was ready to lead the Kaurava army and he would fight dutifully and spare no pain.

Bheeshma is also sensing the fear in Duryodhana, so by blewing his conch so that Duryodhana felt confident that his army was still on his side.

It also indicates the dependence of Duryodhana's ego on external circumstances, such as the roar of conches, in order to strengthen itself, instead of an innate belief that his army was on his side.

।। हिंदी समीक्षा ।।

दुर्योधन की मूर्खतापूर्ण वाचालता के कारण उस की सेना के योद्धाओं की स्थिति बड़ी विचित्र सी हो रही थी। उन पर भी उदासी का प्रभाव प्रकट होने लगा जिसे भीष्म वहीं निकट खड़े देख रहे थे। भीष्म पितामह ने कर्मशील द्रोणाचार्य के मौन में छिपे क्रोध को समझ लिया। उन्होंने यह जाना कि इन सब को इस मनस्थिति से बाहर निकालने की आवश्यकता है अन्यथा स्थिति को इसी प्रकार छोड़ देने पर आसन्न युद्ध के समय योद्धागण प्रभावहीन हो जायेंगे। योद्धाओं के इस मनोभाव को समझते हुये सेनापति भीष्म पितामह ने दुर्योधन के साथ सभी सैनिकों के मन में हर्ष और विश्वास की तरंगें उत्पन्न करने के लिये पूरी शक्ति से शंखनाद किया।

भीष्म के चरित्र को समझना कठिन है क्योंकि वे महान ज्ञानी और अजेय योद्धा थे, उन में अपने वंश के बच्चों के प्रति स्नेह था, इसलिये इन के आपसी युद्ध से उन के मन मे क्षोभ अवश्य था किन्तु दुर्योधन के प्रति कोई द्वेष नही था। हम विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हुए वह सब कर्म करने को बाध्य है, जिन्हें हम नही चाहते। किन्तु उन्होंने अपने को अपनी प्रतिज्ञा के प्रति प्रतिबद्ध कर लिया था, इसलिए धर्म और न्याय को समझते हुए भी, अपना कर्तव्य धर्म प्रतिज्ञा को निष्ठापूर्ण निभाना ही मान लिया था। जब कर्म कर्तव्यपूर्ण हो बिना द्वेष एवम पक्षपात के कर्म कैसे करना चाहिये, इस के भीष्म को भी समझना जरूरी है।

जब कि मजबूरी में अपनी विद्या को राज भवन में विक्रय करने को मजबूर द्रोणाचार्य के लिये दुर्योधन की ओर से युद्ध करना उन्हे पसंद नही था, क्योंकि वे अर्जुन को अत्यधिक चाहते थे और आज अर्जुन ही उन के विरुद्ध था। अतः दुर्योधन के वचन सुन कर भी वह कोई प्रतिक्रिया नही दे सके। अतः यह चरित्र परिस्थितियों से सामना न कर समर्पण कर के अपनी सम्मान की रक्षा करते हुए, जीवन व्यतीत करने वाला का एक और उदाहरण हो सकता है।

गीता ज्ञान से पूर्व प्रथम अध्याय में महाभारत के अग्रणीय चरित्रों को प्रथम अध्याय में शुरुवात में रखते हुए, हम अब अर्जुन के चरित्र की और बढ़ते है।

यद्यपि भीष्माचार्य का यह शंखनाद दुर्योधन के प्रति करुणा से प्रेरित था तथापि उस का अर्थ युद्धारम्भ की घोषणा करने वाला सिद्ध हुआ जैसे कि आधुनिक युद्धों में पहली गोली चलाकर युद्ध प्रारम्भ होता है। शंख के इस सिंहनाद के साथ महाभारत के युद्ध का प्रारम्भ हुआ और इतिहास की दृष्टि से कौरव ही आक्रमणकारी सिद्ध होते हैं।

इस स्थान पर कथा सुनाने वाले संजय की आस्था भी समझना जरूरी है क्योंकि संजय कृष्ण भक्त है इसलिए वो पांडव की ओर कृष्ण होने से प्रभावित भी। उस का दुर्योधन का डरा हुआ बताना आदि धृष्टराष्ट्र भी इसी उद्देश्य से हो सकता हो कि धृष्टराष्ट्र युद्ध रोक दे। भीष्म को वयोवृद्ध कहा गया है जो कौरव एवम पांडव में सब से शाक्तिशाली एवं ज्ञानवान व्यक्ति अब वृद्ध थे। इस लिए उन से अधिक वृद्ध शांतनु के भाई बाह्लीक को अधिक महत्व नही दिया गया।

शंख की ध्वनि युद्ध के आरंभ की सूचना थी, इस के साथ दुर्योधन के अहम को एक संदेश भी, जिस के भरोसे वह युद्ध मे वह उस के साथ है। यह गीता के मुख्य उपदेशों के प्रारंभ की पृष्ठ भूमि है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.12।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.13॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥

"tataḥ śańkhāś ca bheryaś ca,
paṇavānaka-gomukhāḥ..I
sahasaivābhyahanyanta,
sa śabdas tumulo 'bhavat"..II

भावार्थ :

तत्पश्चात् अनेक शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग और सींग आदि बाजे अचानक एक साथ बज उठे, उन का वह शब्द बड़ा भयंकर था॥ १३॥

Meaning:

Immediately thereafter, several conches, bugles, trumpets, kettle-horns and cow-horns resounded simultaneously, growing into a tumultuous sound.

Explanation:

This is another verse in the sequence of verses that brings us closer to the start of the war. It also suggests that the Kaurava army was happy that their commander Bheeshma was eager to begin the war.

As we progress through this verse into some of the later verses, we cannot help but paint a picture of that battlefield, since the words used in these verses are so evocative. For some of us that grew up in India, we probably tend to dig up memories of watching the Mahabharata on Sunday morning, and may be those memories are recalled. With this verse, we now have another dimension that adds depth to the picture - that of sound.

The author of these verses clearly intends to paint a rich picture of the battlefield, and the Kaurava army in particular. We shall see why shortly.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यद्यपि भीष्मजी ने युद्धारम्भ की घोषणा करने के लिये शंख नहीं बजाया था प्रत्युत दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये ही शंख बजाया था तथापि कौरव सेना ने भीष्मजी के शंखवादन को युद्ध की घोषणा ही समझा। अतः भीष्मजी के शंख बजाने पर कौरवसेना के शंख, नगाड़े, तुरही आदि सब बाजे एक साथ बज उठे।

कौरवसेना में उत्साह बहुत था। इसलिये पितामह भीष्म का शंख बजते ही कौरवसेना के सब बाजे अनायास ही एक साथ बज उठे। उन के बजने में देरी नहीं हुई तथा उन को बजाने में परिश्रम भी नहीं हुआ। अलग अलग विभागों में टुकड़ियों में खड़ी हुई कौरव सेना के शंख आदि बाजों का शब्द बड़ा भयंकर हुआ अर्थात् उन की आवाज बड़ी जोर से गूँजती रही।

कौरव सेना का शंख द्वारा उदघोष यही बताता है, संसार मे सांसारिक रूप से जीने- मरने के प्रति लोगो का उत्साह कही कम नही है।

इस अध्याय के आरम्भ में ही धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा था कि युद्धक्षेत्र में मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया अतः सञ्जय ने दूसरे श्लोक से तेरहवें श्लोक तक धृतराष्ट्र के पुत्रों ने क्या किया इस का उत्तर दिया। अब आगे के श्लोक से सञ्जय पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया इस का उत्तर देते हैं।

भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है और परिस्थितियां कैसे जन्म लेती है। गीता का प्रारंभ युद्ध भूमि के दृश्य के विवरण से शुरू होता है जहां कोई नही जानता की संसार का श्रेष्ठ ज्ञान इन्ही परिस्थितियों में कंही आगे जाकर जन्म लेगा। संजय युद्ध के उन क्षणों का ही वरण कर रहा है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.13।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.14॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः॥

"tataḥ śvetair hayair yukte,
mahati syandane sthitau..I
mādhavaḥ pāṇḍavaś caiva,
divyau śaṅkhau pradadhmatuḥ"..II

भावार्थ :

तत्पश्चात् दूसरी ओर से सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ पर आसीन योगेश्वर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाए॥ १४॥

Meaning:

And then, seated on a magnificent chariot harnessed to white horses, Shri Krishna and Arjuna blew their divine conches.

Explanation:

The uproar of the Kaurava army had started to wane. Then from the Pandava side, seated on a magnificent chariot the Supreme Lord Shree Krishna and Arjun, both blew their conch shells intrepidly, which ignited the enthusiasm of the Pandava army as well.

With this verse, we are introduced to the key figures in the Bhagavad Gita, as we leave behind Duryodhana and the Kaurava army. Lord Krishna was a divine incarnation or an avatara, and Arjuna was one of the five Pandava princes. Arjuna was considered the most skillful archer and warrior of

his time. Shri Krishna was a close friend of Arjuna, and offered to be his charioteer for the Mahabharata war.

Sanjay Introduce Krishna as Madhavah. Mādhavah, means Lord Krishna, so Ma represents Lakṣmidevi or Śakthi or power or knowledge and dhava means husband the Lord. Therefore, Ma Dhava means the Lord of wealth; here the wealth is knowledge- wealth and Lord Krishna is endowed with the wealth of knowledge which he is going to impart to Arjuna and therefore Krishna is given the title Mādhava.

Many commentaries offer a lot of background from the Mahabharata in order to describe the grandeur of Arjuna's chariot. It was a robust chariot, endowed with several divine powers. A key feature of the chariot was a flag in which Lord Hanumaan had entered in the form of an emblem. Therefore it is said that Lord Hanuman was one of the few individuals to hear the Gita firsthand. The white hourses of chariot were gifted by chitrarath gandharva, he gifted 100 hourses who can go any where even in air also and chariot was gifted by Agni while burning of khandav van.

In Kathōpaniṣad, the whole chariot is given as an example for human life. In Kathōpaniṣad, our physical body is compared to the chariot and the sense organs are compared to the horses, mind compared to the reins, the sense organs driven are with the help of, controlled with the help of the reins. Similarly horses are controlled by the reins, sense organs are all controlled by the mind. And the sense organs represent knowledge and knowledge is given white colour in our tradition. That is Sarawathy, goddess of knowledge is given the white dress.

Dristdyum was leading Pranav army, but we are introduced by Krishna and Arjun. Krishna hold chariot as "Sarathi" charioteer carrying Arjuna, but the place and post does not make any difference to eminent personnality.

Sanjay glamourised entry of Padava with hope that Dhrithrastra may understand that when God is in the site of Pandava, the war shall be won by them, So, it is better for him to stop the war to safe guard his sons and others.

The prior verses served to paint a picture of the Kaurava army, that was ready to engage in conflict with the Pandavas. As we move further into the text, the perspective shifts from Duryodhana's viewpoint to Arjuna's.

।। हिंदी समीक्षा ।।

तथ्य अत्यन्त साधारण है कि कौरवों की शंखध्वनि का उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने शंखनाद कर के दिया परन्तु संजय ने जिस सुन्दरता और उदारता के साथ इस का वर्णन किया है वह इस बात का स्पष्ट सूचक है कि उसकी सहानुभूति किस पक्ष के साथ थी। वह कहता है श्वेत अश्वों से युक्त भव्य रथ में बैठे माधव और अर्जुन ने अपने दिव्य शंख बजाये। इन के सुंदर रथ पर ध्वजा में हनुमान जी विराजमान है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि संजय के मन में कहीं कोई आशा अटकी है कि संभवत दोनों पक्षों के शंखनाद के वर्णनों में विरोध देखकर इस समय भी धृतराष्ट्र अपने पुत्रों को युद्ध से विरत कर लें।

अर्जुन के दिव्य रथ की विशेषता यह है कि चित्ररथ गन्धर्व ने अर्जुन को सौ दिव्य घोड़े दिये थे। इन घोड़ों में यह विशेषता थी कि इन में से युद्ध में कितने ही घोड़े क्यों न मारे जायँ, पर ये संख्या में सौ-के-सौ ही बने रहते थे, कम नहीं होते थे। ये पृथ्वी, स्वर्ग आदि सभी स्थानों में जा सकते थे। इन्हीं सौ घोड़ों में से सुन्दर और सुशिक्षित चार सफेद घोड़े अर्जुन के रथ में जुते हुए थे।

यज्ञों में आहुतिरूप से दिये गये घी को खाते-खाते अग्नि को अजीर्ण हो गया था। इसीलिये अग्निदेव खाण्डव वन की विलक्षण-विलक्षण जड़ी-बूटियाँ खाकर (जलाकर) अपना अजीर्ण दूर करना चाहते थे। परन्तु देवताओं के द्वारा खाण्डव वन की रक्षा की जाने के कारण अग्निदेव अपने कार्य में सफल नहीं हो पाते थे। वे जब-जब खाण्डव वन को जलाते, तब-तब इन्द्र वर्षा करके उस को (अग्नि को) बुझा देते। अन्त में अर्जुन की सहायता से अग्नि ने उस पूरे वन को जला कर अपना अजीर्ण दूर किया और प्रसन्न होकर अर्जुन को यह बहुत बड़ा रथ दिया। नौ बैलगाड़ियों में जितने अस्त्र-शस्त्र आ सकते हैं, उतने अस्त्र-शस्त्र इस रथ में पड़े रहते थे। यह सोने से मढ़ा हुआ और तेजोमय था। इस के पहिये बड़े ही दृढ़ एवं विशाल थे। इस की ध्वजा बिजली के समान चमकती थी। यह ध्वजा एक योजन (चारकोस) तक फहराया करती थी। इतनी लम्बी होने पर भी इस में न तो बोझ था, न यह कहीं रुकती थी और न कहीं वृक्ष आदि में अटकती ही थी। इस ध्वजा पर हनुमान् जी विराजमान थे। कहते है, गीता का उपदेश उन्होंने भी सुना था।

कहने का तात्पर्य है कि उस सुन्दर और तेजोमय रथ पर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण और उन के प्यारे भक्त अर्जुन के विराजमान होने से उस रथ की शोभा और तेज बहुत ज्यादा बढ़ गया था।

यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि सेनापति धृष्टद्युम्न के होने बाद भी शंखनाद कृष्ण एवम अर्जुन कर रहे है, जब कि कृष्ण केवल अर्जुन के सारथी बन आये। संजय यह बताने की कोशिश कर रहा है कि कृष्ण अच्युत है यानि वो किसी भी स्थान को ग्रहण करे किन्तु उन का मान एवम पद सब से बड़ा है और जहां कृष्ण है वंही जीत है।

जो स्वयं छोटा होता है वही ऊँचे स्थान पर नियुक्त होने से बड़ा माना जाता है। अतः जो ऊँचे स्थान के कारण अपने को बड़ा मानता है वह स्वयं वास्तव में छोटा ही होता है। परंतु जो स्वयं बड़ा होता है वह जहाँ भी रहता है उस के कारण वह स्थान भी बड़ा माना जाता है। जैसे भगवान् यहाँ सारथि बने हैं तो उनके कारण वह सारथि का स्थान (पद) भी ऊँचा हो गया।

संजय अब कौरव पक्ष के बाद आगे के कुछ पदों में पांडव पक्ष का विवरण देता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.14।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.15-18॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंख भीमकर्मा वृकोदरः ॥ 15 ।।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥16।।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥17।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥18।।

"pāñcajanyaḿ hṛṣīkeśo,
devadattaḿ dhanañjayaḥ..l
pauṇḍraḿ dadhmau mahā-śańkhaḿ,
bhīma-karmā vṛkodaraḥ"..।।15।।

"anantavijayaḿ rājā,

kuntī-putro yudhiṣṭhiraḥ..I
nakulaḥ sahadevaś ca,
sughoṣa-maṇipuṣpakau"..।।16।।

"kāśyaś ca parameṣv-āsaḥ,
śikhaṇḍī ca mahā-rathaḥ..I
dhṛṣṭadyumno virāṭaś ca,
sātyakiś cāparājitaḥ''..।।17।।

"drupado draupadeyāś ca,
sarvaśaḥ pṛthivī-pate..I
saubhadraś ca mahā-bāhuḥ
śaṅkhān dadhmuḥ pṛthak pṛthak''..।।18।।

भावार्थ :

हृदय के सर्वस्व ज्ञाता श्रीकृष्ण ने "पाञ्चजन्य" नामक, अर्जुन ने "देवदत्त" नामक और भयानक कर्म वाले भीमसेन ने "पौण्ड्र" नामक महाशंख बजाया।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने "अनन्तविजय" नामक और नकुल तथा सहदेव ने "सुघोष" और "मणिपुष्पक" नामक शंख बजाए।

श्रेष्ठ धनुष वाले काशीराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और कभी न हारने वाला सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र और बड़ी भुजा वाले सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु आदि सभी ने अलग-अलग शंख बजाए॥ १५-१८॥

Meaning:

Hrishikesha blew his conch named Paanchajanya, Arjuna blew his conch Devadatta, and the fearsome Bheema blew his mighty conch named Paundra.

King Yudhishtira, son of Kuntu, blew his conch named Anantavijayam, Nakula and Sahadeva blew their conches named Sughosha and Manipushpaka.

The King of Kashi, a supreme archer, the mighty warriors Shikhandi, Dhristadyumna, King Viraata and Satyaki ..

King Drupada, the sons of Draupadi and Abhimanyu, the mighty armed son of Subhadraa, all blew their respective conches, O King.

Explanation:

Blowing of the conches was a tradition that signified the start of a war. In other words, once that sound was heard, there was no room for compromise, there was no more vacillation on whether or not to fight, everyone was committed to start the war. Note that the Pandava army has well-known conches, but the Kaurava army's conches are nameless.

Shree Krishna is addressed as “Hrishikesh” which means the Lord of the mind and senses. Shree Krishna is the Sovereign Master of everybody’s minds and senses. Throughout his wonderful pastimes, he displayed complete control over his mind and senses.

He addressed yudhisther as king and in this chapter, Sanjay also called Dhritarashtra the “Ruler of the earth.” The real reason for this appellation was to remind him of his duties as the ruler of the country. With so many kings and princes participating from both sides in this war, it was as if the entire earth was split into two parties. It was definite that this mammoth war would cause irreversible destruction. The only person who could stop the war at this juncture was Dhritarashtra, and Sanjay wanted to know if he was willing to do that.

We should remind ourselves again and again that the Gita is first and foremost a practical text on how to lead a balanced life, a life that is in harmony with the world. Therefore, we should try to connect what we read in this text to our own life and experiences.

Arjun is called D which means a person of wealth. material successes cannot be a remedy for human sorrow. If material success could have been a remedy, Arjuna should not face any problem. But we find Arjuna is facing the problem and he finds Atma jñanam alone is a solution. Therefore indirectly it is a teaching that human being can attain material success,; you can work for prosperity; you can work for family, children; all of them, and very good and they help you lead a comfortable life but they will not help you solve the deeper inner problems of life, like attachment, like dependence, like fear, like sorrow.

Arjuna was face to face with the Kaurava army, and the sound of the conches indicated that he was about to deal with an extremely difficult situation - that of war. Most of us also have to deal with extremely difficult situations every day, though usually not that of life or death, but ones with high stakes nevertheless. If you are a student, then a tough exam is an example. If you have a job, then a upcoming meeting with your boss is another example.

When I read the blowing of the conches, I recalled a sound from my childhood which for me had similar implications. Early in the morning, at the same time everyday, I would hear the sound of a air raid warning alarm, coming in from the distance. There was no imminent threat of an air raid, that sound was used only to test the warning system. But for me personally, it reminded me that in a few minutes I would have to face the most difficult situation a shy, nerdy kid has to face everyday - school!

।। हिंदी समीक्षा ।।

पाण्डव सैन्य का वर्णन करते हुये संजय विशेष रूप से प्रत्येक योद्धा के शंख का नाम भी बताता है। भगवान् श्रीकृष्ण के शंख का नाम पांचजन्य था। हृषीकेश यह भगवान् का एक नाम है जिसका अर्थ है इन्द्रियों का स्वामी। इस के बाद के पांडव वीरो ने शंखनाद किया जिस का विवरण भावार्थ में है।

शंखों के नाम मे छुपे संदेश को भी समझना जरूरी है। हृषिकेश अर्थात जो सब के हृदय के ज्ञाता है, भगवान कृष्ण ने पांचजन्य शंख जो पांचो ज्ञानेन्द्रियो को पंच तन्मात्राओं शब्द, स्पर्श, रूप, रस,गंध के रसों को समेट कर रखता है।

देवी सम्पति से सम्पन्न अनुराग से भरे अर्जुन ने धनञ्जय शंख अर्थात जिस में संसार का समस्त धन जीत लिया हो। किंतु जिस ने पूरे संसार को जीता हो, जब तक मन को नही जीत लेता, मोह, ममता, आसक्ति और कामनाओं से दूर नही हो सकता। अपनी आत्मा को जान लेना ही जीव का वास्तविक जितेंद्रिय होना है। यही ज्ञान गीता में हम पढ़ेंगे।

भीमसेन ने पौंड्र अर्थात प्रीति का शंख बजाया।

युधिष्ठिर ने अनंतविजय अर्थात प्रकृति-पुरुष, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के संघर्ष में जो परमतत्व जो अनन्त है, उस को विजय नही कर सकता, उस शंख को बजाता है। यहां युधिष्ठिर को कुन्ती पुत्र राजा भी संबोधित किया है।

नियमो पर चलने वाले नकुल ने सुघोष शंख अर्थात ज्यो ज्यो नियमो का पालन होगा, उन्नति होगी एवम अशुभ का शमन होगा और शुभ होता जाएगा।

सत्संगी सहदेव ने मणिपुष्पक शंख बजाया अर्थात मनीषियों ने प्रत्येक सांस को बहुमूल्य मणि माना है और कहा जाता है "हीरा जैसी स्वासा बातो में बीती जाए" इसलिये जीवन की हर स्वांस में सत्संग और चिंतन होना चाहिए।

इसी प्रकार सभी के नाम व शंख है। मूल बात यही है कि सञ्जय ने शंखवादन के वर्णन में कौरवसेना के शूरवीरों में से केवल भीष्मजी का ही नाम लिया और पाण्डव सेना के शूरवीरों में से भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन भीम आदि अठारह वीरों के नाम लिये। इस से ऐसा प्रतीत होता है कि कौरव सेना के महारथियों के पास शंख के नाम नही भी हो सकते है। सञ्जय के मन में अधर्म के पक्ष (कौरवसेना) का आदर नहीं है। इसलिये वे अधर्म के पक्ष का अधिक वर्णन करना उचित नहीं समझते। परन्तु उन के मन में धर्म के पक्ष (पाण्डवसेना) का आदर होने से और भगवान् श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों के प्रति आदरभाव होने से वे उन के पक्ष का ही अधिक वर्णन करना उचित समझते हैं और उन के पक्ष का वर्णन करने में ही उनको आनन्द आ रहा है। इस बहाने वे धृतराष्ट्र को जिन को उस ने सम्राट भी संबोधित किया है, यह संदेश देना चाहते है कि अनेक देश - प्रदेश के राजा इस विनाशक युद्ध में भाग लेने आए है, वे ही एक मात्र व्यक्ति है जो इस महाविनाश को रोक सकते है।

गीता एक जीवन शैली है यह धार्मिक ग्रंथ से ज्यादा जीने की पध्दति है, आज के समय मे भी जिस परिस्थिति से हम गुजरते है उसे यदि युद्ध के स्वरूप में जाने तो हम किसी भी काम को करने से पहले अपनी कमजोरियों एवम क्षमता का आकलन कर सकते है। युद्ध घोष अपने साथ खड़े लोग है और उस के लिए तैयारी भी पूरी होने चाहिए।

कौरव सेना में जहां आसक्ति, मोह, लोभ, विवशता, कपट आदि आसुरी संपदा है, उस के विरुद्ध पांडव सेना के यह महारथी अपने नाम एवम शंख के द्वारा इन विरुद्ध युद्ध जितने के जितने भी गुणों की आवश्यकता होती है, उस के प्रतीक है, जिन्हें संजय कहना चाहता है कि भीष्म जैसी अटल एवम दृढ़ वासना, मोह, आसक्ति सदाहरण प्रयत्न से नही समाप्त होती, इन सब के आदमी को परब्रह्म के साथ अपनी समस्त शक्तियों की एकाग्र करना पड़ता है। देवी सम्पद के इन अठाहरा गुणों की आवश्यकता होती है, जिन्हें हम आगे भी पढ़ेंगे।

संजय भी नही जानता कि इस युद्ध के विवरण में क्या विश्व संदेश आएगा, परिस्तिथिया कैसे करवट लेगी। वो युद्ध में क्या हो रहा, उस को धृष्टराष्ट्र को सुना रहा है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.15-18 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.19॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

"sa ghoṣo dhārtarāṣṭrāṇāḿ,
hṛdayāni vyadārayat..l
nabhaś ca pṛthivīḿ caiva,
tumulo 'bhyanunādayan"..ll

भावार्थ :

उस भयंकर ध्वनि ने आकाश और पृथ्वी को गुंजायमान करते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय में शोक उत्पन्न कर दिया॥ १९॥

Meaning:

That tumultuous sound resounded through the earth and the sky, shattering the hearts of the sons of Dhritraashtra.

Explanation:

Sanjay conveyed to Dhritarashtra, that when the Pandavas blew their conches, their sound was much louder and spirited than the Kauravas, even though the Pandava army was a fraction of the Kaurava army and the tremendous sound of the various conch shells from the Pandava army was shattering the hearts of his sons.

Similarly, That sound provided a window into the Pandava army's determination and preparation, which had the effect of injecting fear into the hearts of the Kauravas.Whereas, he did not mention any such reaction from the Pandavas, when the Kauravas were creating a commotion. The Kauravas were fearful, as their conscience pricked them for their crimes and misdeeds. They were relying solely on their physical strength to fight the war. However, the Pandavas were confident and felt protected, as the Supreme Lord Shree Krishna was by their side, their victory was definite.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पाण्डव सेना की वह शंखध्वनि इतनी विशाल गहरी ऊँची और भयंकर हुई कि उस (ध्वनि प्रतिध्वनि) से पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग गूँज उठा। उस शब्द से अन्यायपूर्वक राज्य को हड़पनेवालों के और उन की सहायता के लिये (उन के पक्ष में) खड़े हुए राजाओं के हृदय विदीर्ण हो गये। तात्पर्य है कि हृदय को किसी अस्त्रशस्त्र से विदीर्ण करने से जैसी पीड़ा होती है वैसी ही पीड़ा उन के हृदय में शंखध्वनि से हो गयी। उस शंखध्वनि ने कौरवसेना के हृदय में युद्ध का जो उत्साह था बल था उस को कमजोर बना दिया जिस से उनके हृदय में पाण्डवसेना का भय उत्पन्न हो गया।

असत्य एवम आसुरी शक्तियां चाहे कितनी भी भयानक दिखे किन्तु जब सात्विक एवम दैवी शक्तियां के साथ जीव सामना करने को तैयार हो जाता है, तो डर या भय भी आसुरी शक्तियों में ही उत्पन्न हो जाता है। किसी भी सेना, समाज और देश में आत्मबल सत्य और धर्म के मार्ग पर चलने वालो का अधिक होता है, झूठ या असत्य पर चलने वाले भीड़ में चाहे अधिक हो, किंतु हमेशा आत्मबल से कमजोर ही होते है।

संजय द्वारा सुनाया यह प्रसंग ध्यान देने योग्य है कि कौरव सेना ने युद्ध की घोषणा भीष्म की शंख ध्वनि एवम नगाड़ो आदि के शोर से की थी तब यह भय पांडव सेना में नही हुआ। भीष्म ने शंख दुर्योधन को द्रोणाचार्य द्वारा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही करने पर बेचैन होते देख प्रसन्न करने के लिए बजाया जिसे उस की सेना ने युद्ध की घोषणा समझ कर साथ दिया। किन्तु पांडव की सेना ने युद्ध की घोषणा के लिए बजाया।

संजय संभवतः धृष्टराष्ट्र को बार बार यह भी समझाने की कोशिश कर रहा है कि पांडव सेना की संख्या बल चाहे कम हो किन्तु उस के वीरो के मनोबल और उत्साह को देखते हुए कौरव सेना की जीत मुश्किल है अतः युद्ध टाल कर समझौता करना चाहिए किन्तु पुत्र मोह में बंधा धृष्टराष्ट्र संजय के इस संदेश को समझ नही पा रहा।

जब मोह एवम स्वार्थ में अंधे व्यक्ति को कोई शुभचिंतक अपरोक्ष रूप से सांकेतिक भाषा मे कुछ समझाने की कोशिश भी करे, तो भी उस के मोह एवम लोभ के कारण वह उसे अनसुना ही करता है।

युद्ध हो या व्यवसाय या फिर पारिवारिक या सामाजिक संगठन, जीवन के क्षेत्र में कामयाबी उसी के साथ ही जंहा पूरी टीम एक ही उद्देश्य से आप के साथ हो, यदि कोई मजबूरी में आप के साथ है तो वो कौरव की सेना जैसी है जिस की संख्या बल चाहे कितनी भी हो, किन्तु मनोबल गिरा हुआ होने से हार सुनिश्चित है। दूसरा सत्य एवम धर्म के मार्ग पर चलनेवालो के साथ ईस्वर है जो उन को मार्ग दिखाता है। जब लोग स्वार्थ छोड़ कर शुद्ध भावना से आप से जुड़ते है, तो आप को कामयाबी मिलना भी निश्चित है।

युद्ध मे कौरव एवम पांडव सेना के बाद गीता के उपदेश शुरू होने से पूर्व अर्जुन की मानसिकता का अध्ययन आने वाले कुछ श्लोकों में करेगे।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.19।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.20॥

अर्जुन उवाचः
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥20।।

हृषीकेशं तदा _वाक्यमिदमाह महीपते । 21-1।

"atha vyavasthitān dṛṣṭvā,
dhārtarāṣṭrān kapi-dhvajaḥ..I
pravṛtte śastra-sampāte,
dhanur udyamya pāṇḍavaḥ"..II

"hṛṣīkeśaṁ tadā vākyam,
idam āha mahī-pate"..I

भावार्थ :

हे राजन्! इस के बाद हनुमान से अंकित पताका लगे रथ पर आसीन पाण्डु पुत्र अर्जुन ने धनुष उठाकर तीर चलाने की तैयारी के समय धृतराष्ट्र के पुत्रों को देखकर हृदय के सर्वस्व ज्ञाता श्री कृष्ण से प्रार्थना करते हुए कहा...॥ २०॥

Meaning:

Now, as he was about to take up arms against the battle-ready sons of Dhritrashtra, Arjuna - whose chariot displayed the emblem of an ape - spoke these words to Hrishikesha, O King.

Explanation:

Did you observe something different here? By now if you have attempted to read aloud any of the shlokas, you realize that they usually follow the same pattern - 2 lines per shloka, 2 quarters per line, 8 syllables per quarter. This meter used in most of the Gita is called "Anushtup Chhanda". But in this shloka, we see for the first time that there are 3 lines instead of 2.

This pattern or "meter" is changed every so often to indicate that the listener should play close attention to a particular shloka, or the shlokas that follow.

Let's also look at another aspect that this shloka highlights. The core of the Gita is a dialogue between Shri Krishna and Arjuna. In ancient Indian literature, there exists a tradition of beginning

important teachings or messages with the word "atha" which means now and after completion the word "eeti" used.

Pandavs and Kauravas both forfathers are same And both belongs to "kuru vansh". Therefore, skillfully and meaningfully word dhirtrastra' sons and his supporters have been called as the bettle of Mahabharat is between between cousins of same family.

The shlokas so far covered introduction and background, but now, Arjuna starts the dialogue in the next verse, hence the word "atha" is used here.

The emblem of Hanuman on the flag of Arjuna is another sign of victory because Hanuman cooperated with Lord Rama in the battle between Rama and Ravana, and Lord Rama emerged victorious. Now both Rama and Hanuman were present on the chariot of Arjuna to help him. Lord Krishna is Rama Himself, and wherever Lord Rama is, His eternal servitor Hanuman. Thus, all good counsel was available to Arjuna in the matter of executing the battle. In such auspicious conditions, arranged by the Lord for His eternal devotee, lay the signs of assured victory.

Why Hanuman is on the flag of Arjun, it has two stories:

Once Arjun became very boastful of his archery skills and quipped at Shree Krishna. He said, “I do not understand why during Lord Rama’s time, the monkeys worked so hard to make a bridge from India to Lanka with heavy stones? If I was there, I would have made a bridge of arrows.” The Omniscient Lord asked him, “Alright, go ahead show me your bridge.”

Very skillfully Arjun showered thousands of arrows and made a huge bridge. Now, it was time to test it. Shree Krishna called upon great Hanuman for the job. As soon as Hanuman started walking on the bridge, it started crumbling under his feet. Arjun realized his folly; his bridge of arrows could not have upheld the weight of Lord Rama’s huge army. He asked for their forgiveness. Subsequently, Hanuman gave Arjun lessons on being humble and never be proud of his skills. He also granted Arjun a boon that, during the great war, he would seat himself on Arjun’s chariot. Therefore, Arjun’s chariot flag carried the insignia of the great Hanuman.

In another story, Bhima made a special request to Anjaneya: “you should come to the Mahabharatha battle and you should bless us so that we will get victory” and therefore Anjaneya said that “I will be in the form of an emblem on your flag and I will bless you” and people say that Anjaneya also had therefore an opportunity to listen to Gita. Ramopadesa he listened. Krishnopadesam also he listened. There is a commentary on the Gita by Anjaneya. This is called paisaca bhasyam. Paisaca, one who did not have a physical form. So he existed in invisible form; heard the Gita and wrote a commentary And that commentary is even now available. A beautiful simple bhasyam called Hanumat paissca bhasyam. Paissca is language also similar to kashmiri, the bhashyam explain nicely for dwait and adwait.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सामान्य श्लोक से अलग यह श्लोक तीन लाइन में है, तीसरी लाइन 21वे श्लोक की भी लाइन मानी गई है।

व्यास जी अथ का प्रयोग करते हुए, गीता के लिए पृष्ठ भूमि के द्वितीय मुख्य भाग का वर्णन शुरू किया है, अतः "अथ" इस पद का तात्पर्य है कि अब सञ्जय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप भगवद्गीता का आरम्भ करते हैं। अठारहवें

अध्याय के चौहत्तरवें श्लोक में आये इति पद से यह संवाद समाप्त होता है। ऐसे ही भगवद्गीता के उपदेश का आरम्भ उस के दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से होता है और अठारहवें अध्याय के छाछठवें श्लोक में यह उपदेश समाप्त होता है।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह भी व्यास जी धृतराष्ट्र के पक्ष में उन के पुत्र और अन्य को देखने की बात कही है, न की कौरव पक्ष की सेना। इस का कारण कुरूवंश में कौरव और पांडव दोनो ही थे। युद्ध धृतराष्ट्र और पांडू के पुत्रों के मध्य है और दोनो का वंश एक ही है।

प्राचीनकाल में युद्धभूमि पर प्रत्येक श्रेष्ठ योद्धा का अपना एक विशेष सुप्रसिद्ध चिह्नांकित ध्वज होता था। पताका को पहराते समय रथ में बैठे रथी को शत्रु की पहचान होती थी। विशिष्ट चिह्न द्वारा किसी व्यक्ति को पहचानने की प्रथा आज भी युद्ध क्षेत्र में प्रचलित है।

हनुमान जी अर्जुन की पताका में विराजमान होने के लिए दो कथाएं भी है। प्रथम में अर्जुन ने अपनी धनुर्विद्या के अभिमान में भगवान राम द्वारा पत्थर के पुल की जगह तीर का पुल बनाने की बात कर के भगवान राम के धनुर्विद्या पर शंका व्यक्त की थी। तब भगवान कृष्ण ने उसे तीर का पुल बना कर दिखाने को कहा था और फिर हनुमान जी का आह्वान किया था। जब हनुमान जी तीरों के पुल पार कदम रखे तो वह उन के वजन को सहन न कर सका और टूट गया, जिस से अर्जुन के गर्व का भी नाश हुआ। तब उस में हनुमान जी से वरदान स्वरूप सहायता मांगी और इस युद्ध में अर्जुन के रथ को स्थिर करने के लिए हनुमान जी उस के ध्वज में विराजे।

अन्य कथा में भीम और हनुमान जी वायु पुत्र होने से भीम द्वारा हनुमान जी महाभारत के युद्ध में सहायता मांगने पर हनुमान जी अर्जुन के ध्वज पर विराजे। इसी ध्वज पर बैठे बैठे उन्होंने गीता भी सुनी और रामायण काल को वो जानते भी थे। इस लिए उन्होंने रामोपदेश और कृष्णोपदेश दोनो सुने और उन से रचित पैशाच भाष्य की रचना हुई, पैशाच एक भाषा का भी नाम है जो कश्मीरी से मिलती है और इस में द्वैत - अद्वैत का वर्णन है ।

संजय द्वारा किये गये वर्णन से प्रतीत होता है कि अर्जुन धर्मयुद्ध को प्रारम्भ करने के लिये अधीर हो रहा था। उसने अपना धनुष उठा लिया था जिससे उसकी युद्धतत्परता का संकेत मिलता है।

अर्जुन के रथ पर हनुमान जी ध्वज पर विराजमान है, कृष्ण को राम का अवतार माना गया है, अतः जहां राम है वही हनुमान है। अर्जुन पूर्ण आत्म विश्वास के अपना धनुष उठा कर आगे के श्लोक में कहता है।

पूर्ण आत्मविस्वास उसी व्यक्ति में होता है जिस के साथ ईश्वर हो एवम स्वयम उस कार्य के लिए पारंगत हो। ज्यादातर अपनी क्षमता से अधिक की चाह या लोभ उन लोगो मे ज्यादा होती है जो उस के लायक नही होते, यह लोग अक्सर दुसरो की क्षमता पर ज्यादा निर्भर होते है और संकट के समय आत्मविस्वास से भरे भी नही होते। दुर्योधन और अर्जुन की तुलना में, अर्जुन का धैर्य पूर्ण विस्वास और फिर धनुष उठा कर युद्ध की ओर प्रस्थान करना इस बात का द्योतक़ है कि किसी कार्य को पूरा करने का बीड़ा अयोग्य व्यक्ति और योग्य व्यक्ति द्वारा किस प्रकार उठाया जाता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.20 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.21-22॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।। 21 ।।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥22।।

arjuna uvāca,

"hṛṣīkeśaṁ tadā vākyam,
idam āha mahī-pate"..I
"senayor ubhayor madhye.
rathaṁ sthāpaya me 'cyuta"II21 II

yāvad etān nirīkṣe 'haṁ,
yoddhu-kāmān avasthitān..I
kair mayā saha yoddhavyam,
asmin raṇa-samudyame"..II22II

भावार्थ :

कि हे अच्युत! कृपा करके मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खडा़ करें। जिस से मैं युद्धभूमि में उपस्थित युद्ध की इच्छा रखने वालों को देख सकूँ कि इस युद्ध में मुझे किन-किन से एक साथ युद्ध करना है।॥ २१-२२॥

Meaning:

Arjuna said: O infallible one, in preparation for combat, position my chariot between the two armies till I have surveyed those battle-hungry warriors with whom I have to fight.

Explanation:

And so begins the conversation between Arjuna and Shri Krishna. At this point, Arjuna was firmly in control of the situation, and like any determined warrior, he commanded his charioteer to carry out his instructions.

As a pure devotee of the Lord, Arjuna had no desire to fight with his cousins and brothers, but he was forced to come onto the battlefield by the obstinacy of Duryodhana, who was never agreeable to any peaceful negotiation. Therefore, he was very anxious to see who the leading persons present on the battlefield were.

Although there was no question of a peacemaking endeavor on the battlefield, he wanted to see them again, and to see how much they were bent upon demanding an unwanted war.

Similar to the analysis of Duryodhana's emotional state from the previous verses, let us analyze Arjuna's state. Here, it is clear that he was charged up for war, his warrior instincts had kicked into high gear, and he was bursting with self-confidence.

Another point to consider here is how much, like Arjuna, we rely on our sense organs to deliver the right information to our brain so that we can take the right decision and carry out the necessary action that a situation demands. Our sense organs comprise our eyes, ears, nose, tongue and skin. Any information that we process must necessarily come from one of these organs. Arjuna was located at some distance from the opposing army, so he knew that he needed to get a better look at the opposing army, and therefore have all the information he needs to make his battle plans.Sense organs and understanding how they function is a topic that will be discussed at great length in the rest of the Gita.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यहाँ हम अर्जुन को पूरे आत्मबल और संयत रूप में एक सेना नायक के समान रथ सारथि को आदेश देते हुए देखते हैं कि उसका रथ दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा कर दिया जाय जिस से वह विभिन्न योद्धाओं को देख और पहचान सके जिन के साथ उसे इस महायुद्ध में लड़ना होगा। क्योंकि उस के रथ के सारथी भगवान श्री कृष्ण है, इसलिये आदेश का स्वरूप आज्ञा का न हो कर प्रार्थना का है, " हे अच्युत!" ।

इस प्रकार शत्रु सैन्य के निरीक्षण की इच्छा व्यक्त करते हुये वीर अर्जुन अपने साहस शौर्य तत्परता दृढ़ निश्चय और अदम्य शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। कथा के इस बिन्दु तक महाभारत का अजेय योद्धा अर्जुन अपने मूल स्वभाव के अनुसार व्यवहार कर रहा था। उस में किसी प्रकार की मानसिक उद्विग्नता के कोई लक्षण नहीं दिखाई दे रहे थे।

अर्जुन युद्ध भूमि में दुर्योधन की समझोता नही करने की जिद्द के कारण परिस्थिति जन्य आया था। जिस में समझौता स्वयं भगवान कृष्ण भी नही करवा पाए। अतः यह युद्ध एक व्यक्ति की जिद्द, लोभ, अहंकार, द्वैष और अपरिपक्वता के कारण हो रहा था।

विचार योग्य बात यह है कि कृष्ण स्वयं ईश्वर होते हुए भी भक्त की अधीनता स्वीकार कर रहे है, ईश्वर सभी को मार्ग दिखाता है और कभी भक्त भी ईश्वर को मार्ग दिखाने के कहे तो भी समझो कि कुछ अच्छा ही होने वाला है।

दुर्योधन की तुलना में अर्जुन पूर्ण आत्मविस्वास से भरा था किंतु वो जानता था कि यह युद्ध एक लोभी एवं स्वार्थी व्यक्ति की अनैतिक इच्छा के परिणामस्वरूप हो रहा था अतः उस की इच्छा थी वो देखे की इस युद्ध मे कौन कौन व्यक्ति है जिन के साथ उस को युद्ध करना पड़ रहा है।

व्यक्तिगत जीवन मे बहुत बार इसी प्रकार की दुविधाएं आती है जहां किसी को अपने हित के संघर्ष करना पड़ता है और खासतौर पर जब वो सही हो। संघर्ष के लिये तैयार व्यक्ति हमेशा यह जानने का इच्छुक रहता है कि कौन लोग जिन के साथ वो बड़ा हुआ आज उस के साथ नही है। हमारी मनोवृति एवम क्षमता का इस पर बहुत बड़ा प्रभाव रहता है एवम हमारे दृढ़ निश्चय में और हमारी कार्यकुशलता में हमारे साथ और विरुद्ध खड़े लोग का प्रभाव हमारे ही संस्कारो के कारण हम पर बहुत अधिक पड़ता है।

परिस्थितियां हमे किस मोड़ पर खड़ा करती है एवम भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है, इसे कोई नही जानता किन्तु जो स्वतः हो रहा है वह ऐसा नही लगता। कौन जानता था कि युद्ध से पूर्व महाभारत में अर्जुन की यह इच्छा या आज्ञा की उसे किन लोगों से युद्ध करना है, गीता के उपदेश का कारण बन जायेगा।

अच्छे संस्कारित लोगो मे धर्म, दया, स्नेह, आत्मिकभाव अक्सर उन के व्यक्तित्व का द्योतक है किंतु स्वार्थी, लोभी एवम दुष्ट व्यक्ति के लिये यह उन की कमजोरी एवम हथियार है। लोभी व्यक्ति हमेशा इस का लाभ ही उठाने की सोचता है, इसलिये वह स्वयं किसी भी सीमा तक जा सकता है किंतु उसे लगता है, सामने वाला भला व्यक्ति भविष्य की लड़ाई-झगड़े को टालने के लिये, समझौता कर लेगा और अपना अधिकार छोड़ देगा। इस से उसे बिना कुछ गवाएं, जिद्द में वह सब कुछ मिल जाएगा, जिस का वह अधिकारी नही है। आज के पारिवारिक जीवन मे अक्सर यह देखने को मिलता है। धृतराष्ट्र को पांडव से कुछ ऐसी ही आशा थी।

न्याय - अन्याय, धर्म - अधर्म की कोई अनिश्चित परिभाषा नहीं है। इसलिए कुबुद्धि में भी अपने द्वेष, स्वार्थ, लोभ और अहंकार को ले कर मनुष्य न्याय और धर्म की नई परिभाषा गढ़ कर अपने को सही मानता है, उन का साथ देने वाले चाहे कितने भी बड़े ज्ञानी और सदधर्मी हो, अपनी मजबूरी को अपना धर्म मान कर उन का साथ भी निभाते है। इस परिस्थितियों में मोह, ममता, आसक्ति, भय, अहम, आदर, और अच्छे संस्कार मनुष्य को यदि अधर्म का प्रतिकार करने से रोकता है, तो उस का कर्तव्य धर्म क्या हो?

गीता ब्रह्मज्ञान है जिस में अर्जुन जीव का प्रतीक है और भगवान श्री कृष्ण ब्रह्म के। इस इतिहासिक प्रसंग में रूपात्मक स्वरूप का भी अर्थ हम आगे समझने की चेष्टा भी करेंगे।

गीता के अध्ययन के लिए यह स्थिति में अर्जुन की प्रतिक्रिया का महत्व बहुत अधिक है, जिसे हम आगे के श्लोकों में समझेगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.21-22।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.23॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥

"yotsyamānān avekṣe 'haḿ,
ya ete 'tra samāgatāḥ..I
dhārtarāṣṭrasya durbuddher,
yuddhe priya-cikīrṣavaḥ"..I

भावार्थ :

मैं उन को भी देख सकूँ जो यह राजा लोग यहाँ पर धृतराष्ट् के दुर्बुद्धि पुत्र दुर्योधन के हित की इच्छा से युद्ध करने के लिये एकत्रित हुए हैं॥ २३॥

Meaning:

Let me see those battle-hungry warriors, those who wish to adore that evil-minded Dhritraashtra's son, who have gathered here to fight this war.

Explanation:

Arjuna's self-confidence and bravado rose to fever pitch. His words indicated disgust for Duryodhana, and everyone associated with him, including Dhritraashtra, who was Arjuna's uncle and a senior figure in the family. Arjuna seemed to say "my victory is guaranteed, my prowess is superior, so let me look at the people that I am going to kill in battle today". He probably also wanted his opponents to take a closer look at him, so that the sight of Arjuna in full warrior mode would further weaken their spirits. Like Duryodhana's comment from a few verses ago "our army is unlimited and theirs is not", this comment indicated that Arjuna's ego was as puffed up as Duryodhana's.

Geeta is most practical treatise, therefore, it is written on battlefield of kurukshetra. In Mahabharat, Duryodhan was under influence of his maternal uncle and lust of his father Dhritrastra for the kingdomship of Hastinapur. Since maternal uncle has his own hidden agenda, he never advised Duryodhan correctly. He has been developed with revenageful nature against Pandavas. Since Childhood he has played several illicit games to kill or harm the Pandavas. Even though he is quite educated, great warrior in mace and good in nature's with his friends etc. Presently he refused to settle the terms after returning of Pandavas from अज्ञातवास i.e. secrete living even Pandavas were ready to settle on minimum. Failure of compliances turned to Mahabharat's war. Pandavas were fighting for their rights, therefore, they called themself on Dharma side and Duryodhana was on

wrong site, they called his site on Adharma site. But who decide dharma or adharma, when duryodhana also had same view vice-versa with several justifications And this is real life story of any dispute, when we are denied or we denied for our rightful claims in our family, business and/or society. We also found that supporters never choose right or wrong, they choose the site as per their precepton.

Little did Arjuna know that Shri Krishna was going to totally change his state of mind very, very soon.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में कही गयी बात को ही अर्जुन इस श्लोक में बल देकर कह रहा है। शत्रु सैन्य के निरीक्षण के कारण को भी वह यहाँ स्पष्ट करता है। एक कर्मशील व्यक्ति होने के कारण वह कोई अनावश्यक संकट मोल नहीं लेना चाहता। इसलिये वह देखना चाहता है कि वे कौन से दुर्मति सत्तामदोन्मत्त और प्रलोभन से प्रताड़ित लोग हैं जो कौरव सेनाओं में सम्मिलित होकर सर्वथा अन्यायी तानाशाह दुर्योधन का समर्थन कर रहे हैं।

यहाँ धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को दुष्टबुद्धि कह कर अर्जुन यह बताना चाहते हैं कि इस दुर्योधन ने हमारा नाश करने के लिये आज तक कई तरह के षड्यन्त्र रचे हैं। हमें अपमानित करने के लिये कई तरह के उद्योग किये हैं। नियम के अनुसार और न्यायपूर्वक हम आधे राज्य के अधिकारी हैं पर उस को भी यह हड़पना चाहता है, देना नहीं चाहता। ऐसी तो इस की दुष्टबुद्धि है और यहाँ आये हुए राजा लोग युद्ध में इस का प्रिय करना चाहते हैं वास्तव में तो मित्रों का यह कर्तव्य होता है कि वे ऐसा काम करें ऐसी बात बतायें जिस से अपने मित्र का लोक परलोक में हित हो। परन्तु ये राजा लोग दुर्योधन की दुष्टबुद्धि को शुद्ध न कर के उलटे उस को बढ़ाना चाहते हैं और दुर्योधन से युद्ध कराकर युद्ध में उस की सहायता कर के उस का पतन ही करना चाहते हैं। इस के साथ पूर्ण आत्मबल और अहंकार में वह अपने से बड़ों का सम्मान भी भूल चुका है, इसलिए संबोधन में अपने चाचा के पुत्र अर्थात धृतराष्ट्र पुत्र कह कर संबोधित करता है।

यहां धनुर्विद्या में परांगत अर्जुन के अहंकार की झलक है और अतिरिक्त आत्म विश्वास की भी। यहां अर्जुन एक योद्धा की भांति पूर्ण रूप से तैयार है व्यक्ति को यह तैयारी मानसिक तौर पर भावना, बुद्धि एवम स्वयं की कार्यक्षमता पर मिलती है, यही भावनाएं, बुद्धि एवम विचारशीलता को प्रभावित करने या क्रियाशील करने वाले शरीर के अंग होते है जो आँख, कान, मुह, हाथ और पाव द्वारा पल पल की सूचना मन, मस्तिक को बताते है जिस से मन का निश्चय बदलता रहता है। अर्जुन एवम दुर्योधन के युद्ध पूर्व की मानसिक स्तिथि आगे गीता के अध्ययन के बहुत आवश्यक है। क्योंकि हम भी किसी कार्य को प्रारम्भ करने से किस मानसिक स्थिति में होते है क्या वो हमारे नियंत्रण में है या संवेदना, परिस्थिति एवम हमारी क्षमता से तैयार होती है।

व्यवहार में यह देखने मे आया कि दुर्बुद्धि दुर्योधन का साथ कौन कौन दे रहे है, इस का तात्पर्य यह भी है कि इस संसार मे गलत लोगो के साथ भी लोग विवशता, लोभ, मोह, स्वयं के निजी धर्म से बंधता एवम शुद्र भाव अर्थात सेवा की विक्रयता से देते है। यदि आप सही भी है तो भी यह स्पष्ट है कि संसार सत्य धर्म का पालन करनेवाले लोगो से अधिक असत्य पर सांसारिक लोभ, मोह एवम कामना पर चलने वाले लोग ज्यादा है, तो ज्ञानी तो है किंतु सत्य के साथ निर्भय हो, विरोध कर के दुष्ट प्रवृति के लोगो का साथ नही छोड़ते। वर्तमान में अनेक राजनेता, जिन पर भष्टाचार, हत्या, बलात्कार, चोरी, रिश्वत आदि कितने भी मुकदमे क्यों न हो, उन के समर्थन में भी लोग उतने ही खड़े है। रावण से हिटलर तक, देशद्रोहियो से ले कर परिवार तोड़ने वालों तक सभी के लोभ, मोह, कामनाओ के साथ आज भी लोग खड़े है। यही अर्जुन का एक आश्चर्य भी है कि वह देखना चाहता है अधर्म के मार्ग पर उस का साथ न दे कर वो लोग है, जो आज उस के विरुद्ध अधर्म के साथ खड़े हो कर उस से युद्ध करना चाहते है।

गीता एक व्यवहारिक ज्ञान संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य के साथ पूर्ण तत्त्वदर्शन का ज्ञान है। दुर्योधन एक वीर योद्धा था किंतु उस पर प्रभाव उस के मामा एवम उस के पिता धृतराष्ट्र के राज्य को पाने की कामना और आसक्ति का था। बचपन से संस्कार एवम संगत के कारण एक ही गुरु की शिक्षा और दीक्षा के बावजूद दुर्योधन में अहंकार, कामना, आसक्ति एवम ईर्ष्या, द्वेष अधिक था। उस के अंदर गुण नही थे, यह नही कह सकते क्योंकि उस के पास कर्ण जैसा मित्र भी था। मामा शकुनि ने अपनी कुटिल नीति में उस का उपयोग किया इसलिए उस ने पांडवों को वनवास से लौटने के बाद उन का खोया

राज्य लौटने से इंकार, एक इंच भूमि भी नही देने तक कर दिया। उसे लगता था कि साधन विहीन पांडव उस का कुछ नही बिगाड़ सकते, किंतु युद्ध भूमि में पांडव के पक्ष में सात अक्षरोहिणी सेना देख कर वह विचलित हो गया, जिसे हम ने अभी तक पढ़ा।

पांडव क्योंकि अपने हक की लड़ाई लड़ रहे थे इसलिए वे इसे धर्म - अधर्म की लड़ाई कहते है। किंतु दुर्योधन के पक्ष में जो भी खड़े थे, वे भी अपने अपने धर्म के अनुसार ही है। इसलिए धर्म, न्याय, मोक्ष, कर्म , कर्तव्य जैसे प्रत्येक ज्ञान को गीता ने व्यवहारिक दिया है, जो हम आगे पढ़ेंगे।

अर्जुन के ऐसा कहने पर भगवान् ने क्या किया इस को सञ्जय आगे के दो श्लोकों में कहते हैं।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.23।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.24-25॥

संजय उवाचः,

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥24॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥25॥

"sañjaya uvāca,

evam ukto hṛṣīkeśo,
guḍākeśena bhārata..I
senayor ubhayor madhye,
sthāpayitvā rathottamam"..II24II

"bhīṣma-droṇa-pramukhataḥ,
sarveṣāḿ ca mahī-kṣitām..I
uvāca pārtha paśyaitān,
samavetān kurūn iti"..II25II

भावार्थ :

संजय ने कहा - हे भरतवंशी! गुडाकेश (अर्जुन) द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हृदय के पूर्ण ज्ञाता हृषिकेश (श्रीकृष्ण) ने दोनों सेनाओं के बीच में उस उत्तम रथ को खड़ा कर दिया। इस प्रकार भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण तथा संसार के सभी राजाओं के सामने कहा कि हे पार्थ! युद्ध के लिए एकत्रित हुए इन सभी कुरु वंश के सद्स्यों को देख॥ २४-२५॥

Meaning:

Sanjay said:

O descendant of Bharat, having heard Gudaakesha address him, Hrisheekesha positioned his magnificent chariot between the two armies.

In front of Bheeshma, Drona and the other kings, he said "O Paartha, behold all the Kuru warriors gathered here".

Explanation:

We return back to Sanjay, who was describing the kurukshetra war field position Dhirtrastra about battlefield, called him "Bharat" means whose ancestor was Maharaja Bharat, a glorifed king. The object was to stop the war between family for kingdom.

Shri Krishna (hrishikesh a person who conquers all his sense) obeyed Arjuna's (gudakesh - person who conquers his sleep means pure heart person) instructions, like any devoted charioteer should, and positioned their chariot in the middle of the Kaurava and Paandava armies. But he chose an interesting location, he positioned it right where Arjuna could see his fondest relatives, friends and well wishers on the Kaurava side. So now, Arjuna was face to face with the people he had love and respect for, including Bheeshma and Drona.

This verse contains the first words spoken by Shri Krishna in the Gita, and reflect his wise and clever personality. Instead of referring to the Kauravas as "sons of Dhritraashtra" as Arjuna and Sanjaya did, he refers to them as "Kurus". It was to remind Arjun that both Kauravas and Pandavas were all decedents of the great king Kuru. Therefore, the enemy he was so eager to kill was actually his own family and relatives. This was an interesting choice, because both Kauravas and Paandavas are part of the Kuru dynasty. So Shri Krishna was pointing out the similarity between the two armies rather than their differences.The Omniscient Lord was sowing the seed of delusion in Arjun's mind, only to eliminate it later.

In addition, Shri Krishna wanted to use this opportunity to create the conditions in which he would deliver the teaching of the Gita. He knew that Arjuna's puffed up ego and battle spirit would be challenged by bringing him face to face with warriors like Bheeshma and Drona, who were not just mighty and powerful, but were also people he cared a lot about.

।। हिंदी समीक्षा ।।

कथा वापस संजय के पास लौट आती है जहां वह धृतराष्ट्र को "भारत" संबोधित करते हुए , यह याद दिलाना चाहता है कि वे उस उच्च वंश से है जिन के लिए राज्य सत्ता सुख भोगने की बजाए, प्रजा पालन के क्षत्रिय धर्म के पालन करना कर्तव्य है। भरत राजा ने स्थापित यही किया था कि राजा का चयन योग्यता के आधार पर होना चाहिए, न की वंश परंपरा से।

भगवान् श्रीकृष्ण के लिए विश्लेषण सभी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला हृषिकेश है जो उस भव्य रथ को अपनी निद्रा पर विजय प्राप्त कर चुकने वाला गुडाकेश अर्थात सात्विक वृति के अर्जुन के कहने को आज्ञा मान कर भीष्म और द्रोण दोनों के सम्मुख एक स्थान पर लाकर खड़ा कर देते है। एक कर्तव्यनिष्ठ सारथि के समान वे अर्जुन से कहते हैं, हे पार्थ ! यहाँ एकत्र हुए दोनो पक्ष के इन कौरवों को देखो। कृष्ण द्वारा रथ को युद्ध के मध्य ले जा कर समस्त कुरु को देखने के लिए कहा जाना भी महत्व पूर्ण है तांकि अर्जुन जान ले युद्ध मे पक्ष एवम विपक्ष में एक ही परिवार के लोग है। सम्पूर्ण प्रथम अध्याय में केवल ये ही शब्द हैं जिन्हें भगवान ने कहा है। उन शब्दों ने उस चिनगारी का काम किया जिसने अर्जुन के अहंकार पर आधारित झूठे मूल्यों एवं धारणाओं के महल को जलाकर राख कर दिया। इस के पश्चात् हम देखेंगे कि इन शब्दों की अर्जुन पर क्या प्रतिक्रिया हुई और किस प्रकार उस का मन टूटकर बिखर गया।

पार्थ का अर्थ है पृथापुत्र अर्जुन। पृथा कुन्ती का दूसरा नाम है। इस संस्कृत शब्द पार्थ में पार्थिव की गन्ध मिलती है जिस का अर्थ है मृत्तिका निर्मित। यह सम्बोधन अत्यन्त अर्थपूर्ण है। इस का तात्पर्य यह है कि गीता सत्य का संदेश है जिसे अमृत स्वरूप भगवान् ने मनुष्य के सार्वकालिक प्रतिनिधि मर्त्य पुरुष अर्जुन को सुनाया है।

गीता में प्रत्येक शब्द का चयन बहुत ही उत्तम किया गया है। युद्ध के आतुर अर्जुन के आग्रह को कि उस को किस के विरुद्ध युद्ध करना है कृष्ण ने बहुत ही चतुराई पूर्ण मध्य में रथ ले जा कर दिखाया कि युद्ध कुरु वंश में है। युद्ध के लिये एकत्र हुए इन कुरुवंशियों को देख ऐसा कहने का तात्पर्य है कि इन कुरुवंशियों को देख कर अर्जुन के भीतर यह भाव पैदा हो जाय कि हम सब एक ही तो हैं इस पक्ष के हों चाहे उस पक्ष के हों भले हों चाहे बुरे हों सदाचारी हों चाहे दुराचारी हों पर हैं सब अपने ही कुटुम्बी। इस कारण अर्जुन में छिपा हुआ कौटुम्बिक ममतायुक्त मोह जाग्रत् हो जाय और मोह जाग्रत् होने से अर्जुन जिज्ञासु बन जाय जिस से अर्जुन को निमित्त बनाकर भावी कलियुगी जीवों के कल्याण के लिये गीता का महान् उपदेश किया जा सके इसी भाव से भगवान् ने यहाँ पश्यैतान् समवेतान् कुरुन् कहा है।

जीव-ब्रह्म के ज्ञान मार्ग में जीव जब ब्रह्म स्वरूप को स्वीकार करता है तो उस का प्रथम युद्ध मोह का ही होता है। मोह अपने विरुद्ध खड़े लोगो से हो या अपने संग, इन सब का त्याग होना निश्चित है।

आसक्ति, अहम एवम कामना यही तीन तत्व जीव को प्रकृति से बांध देते है, जिस के कारण वह अपना मूल स्वरूप भूल कर प्रकृति से प्राप्त स्वरूप को ही कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव से ग्रहण करता है। "कुरु पश्य" कह कर गीता के अध्ययन का सूत्रपात भगवान श्री कृष्ण अर्जुन के सामने रखते है जिस से युद्ध के तैयार अर्जुन जान सके मुक्ति के मार्ग में उसे क्या क्या त्यागना पड़ सकता है। अर्जुन में अपने सर्वश्रेष्ठ योद्धा होने का अहंकार तो हम पहले ही जान चुके है, अहम के बाद जो अन्य तत्व मोह, ममता और उस से भ्रमित शास्त्रोचित ज्ञान को भी समझना आवश्यक है, क्योंकि संपूर्ण गीता में इन सब का ही निवारण है।

एक अच्छे मार्गदर्शक की भांति जब शिष्य कोई जानने की चेष्टा करे तो गुरु का कर्तव्य है कि नकारत्मक एवम सकारत्मक दोनो पहलू बताये। इसलिये कृष्ण जी रथ ऐसी जगह खड़ा किया जिस से अर्जुन न केवल दुश्मन वरन अपनी भी सेना के लोगो को देख सके।

अर्जुन ज्ञानी एवम सात्विक गुणों से युक्त श्रेष्ठ योद्धा था किंतु तत्वदर्शी नही। उस का ज्ञान प्राकृतिक था, आत्मसात नही। इसलिए अर्जुन का युद्ध भूमि अपने ही लोगो को देख कर क्या प्रतिक्रिया होती है, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.24-25 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.26॥

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥

"tatrāpaśyat sthitān pārthaḥ,
pitṝn atha pitāmahān..l
ācāryān mātulān bhrātṝn,
putrān pautrān sakhīḿs tathā"..ll

भावार्थ :

वहाँ पृथापुत्र अर्जुन ने अपने ताऊओं-चाचाओं को, दादों-परदादों को, गुरुओं को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को और मित्रों को देखा॥ २६॥

Meaning:

There, Arjuna saw his fatherly and grandfatherly elders, teachers, uncles, brothers, sons, grandsons, as well as friends, in-laws and well-wishers, present in both armies.

Explanation:

Before Shri Krishna had spoken, the Kaurava army seemed like one big sea of evil to Arjuna, ready to be destroyed. But after Arjuna heard " kuru Pashay" those words, he began to spot some known faces in the Kaurava and pandava army. He saw Drona, Bheeshma, and all the other people he knew. Soon, he began to see familiar faces in both the Kaurava and Paandava armies.

We noted the word pita (पिता) and pitamahan (पितामह) used for seeing by Arjun. There are five people, who are as good as the fathers. First one is janitā, the biological father, who has given birth to the person, who is popularly known as thefather. Then the next one is upaneta; one who gives the sacred thread, The next one yasca vidyam prayacati, Guru is also considered a father; Then the fourth father is Anna dhatha And the fifth and final father is bhaya thratha, who gives security. similarly, pitāmahāha, if there are many fathers, there must be many grand-fathers also. pitamahan, then आचायार्न acaryan, teachers in different fields, especially in the field of archery, the ācāryā is there, Drōṇa is standing in front,

This experience is not so far away from the real world. In fact, a similar situation could have been faced by soldiers in the India Pakistan war, where many soldiers may have had to fight their friends and relatives. Even if we never have to wage war, we may have faced a similar situation.

Imagine you are a student who is about to graduate from college. You have been shortlisted for a prestigious job that is also highly selective - there is just one student that will get recruited from your college. You prepare for this interview for several weeks. On the day of the interview, you are almost 100% sure that you will pass through the interview with flying colours. As you step into the waiting hall for the interview, you conduct a quick survey of the candidates that you will compete against. You find out that Miss X, someone who's always on top of the dean's list, someone who you thought had already accepted another offer and one of cousin is also waiting in the interview hall, looking sharp and confident.

Attachment is compared to a rope, because it binds me with other people and more I am bound, the more I lose my freedom, because my happiness is not determined by me. My happiness will be determined by so many other people with whom I have the problem of attachment and therefore they are called bandhūn - bāndhava (बंधु - बांधव).

What goes through your mind?

।। हिंदी समीक्षा ।।

जब भगवान् ने अर्जुन से कहा कि इस रणभूमि में इकट्ठे हुए कुरुवंशियों को देख तब अर्जुन की दृष्टि दोनों सेनाओं में स्थित अपने कुटुम्बियों पर गयी। उन्होंने देखा कि उन सेनाओं में युद्ध के लिये अपने अपने स्थान पर भूरिश्रवा आदि पिता के भाई खड़े हैं जो कि मेरे लिये पिता के समान हैं। भीष्म सोमदत्त आदि पितामह खड़े हैं। द्रोण कृप आदि आचार्य (विद्या पढ़ानेवाले और कुलगुरु) खड़े हैं। पुरुजित कुन्तिभोज शल्य शकुनि आदि मामा खड़े हैं। भीम दुर्योधन आदि भाई खड़े हैं। अभिमन्यु घटोत्कच लक्ष्मण (दुर्योधनका पुत्र) आदि मेरे और मेरे भाइयों के पुत्र खड़े हैं। लक्ष्मण आदि के पुत्र खड़े हैं जो कि मेरे पौत्र

हैं। दुर्योधन के अश्वत्थामा आदि मित्र खड़े हैं और ऐसे ही अपने पक्ष के मित्र भी खड़े हैं। द्रुपद शैब्य आदि ससुर खड़े हैं। बिना किसी हेतु के अपने अपने पक्ष का हित चाहने वाले सात्यकि कृतवर्मा आदि सुहृद् भी खड़े हैं।

शास्त्रों के अनुसार पिता शब्द पांच पुरुषो के लिए प्रयोग होता है, यह पांच पिता में प्रथम जन्म देने वाला, द्वितीय द्विज संस्कार दे कर जनेऊ प्रदान करता है, तृतीय वह पुरुष जो गुरु के स्थान पर होता है अर्थात विद्या प्रदान करता है, चतुर्थ पिता जो अन्न प्रदान कर के पालन करता है और पंचम पिता जो सरंक्षण दे कर भय से मुक्त करता है। अर्जुन का जन्म वन में हुआ था, उस के पिता की मृत्यु के बाद उस का पालन भीष्म के सरंक्षण में हुआ था, जब कुन्ती सभी बच्चों को ले कर हस्तिनापुर लौट आई थी। पिता जैसे ही पितामह भी अनेक हो सकते है। इन से एक संबंध भावुकता और प्रेम का होता है। यह ही अर्जुन कौरव और पांडव की सेना में युद्ध के आतुर लोगो में अपने पिता, पितामह, गुरु, भाईयो, सखा, मित्र के रूप में देख रहा था।

ज्ञान की दृष्टि से जब जीव मोक्ष की ओर बढ़ता है तो उसे प्रकृति में स्थित मोह, कामना, आसक्ति यहाँ तक कि अहम, सांसारिक ज्ञान आदि सभी छोड़ना पड़ता है। अर्जुन यानि, कुरुक्षेत्र अर्थात निर्वाण का मार्ग फिर सामने खड़े योद्धा सांसारिक भावनाओं, ज्ञान, व्यक्तित्व, प्रेम, ममता, वात्सल्य के प्रतीक। मुक्ति का मार्ग इन सब के बीच मे इन सब से मुक्त हो कर ही निकलता है।

अर्जुन की यह स्थिति आज के प्रसंग पर भी सही है क्योंकि जिस कार्य को हम अपने विचारों, भावनाओ एवम शिक्षा है आधार पर कर रहे होते है उस पर हर नई सूचना हमारे निर्णय को बदलती है। फिर यदि आप को लगे कि यह कार्य से आप के सगे संबंधी या अपने ही परिवार के विरुद्ध है तो लगभग हमारी स्थिति अर्जुन के ही भांति हो जाएगी जिसे हम आगे पढ़ेगे।

संसार मे व्यक्ति जितना घरवालों से हारता है उतना शायद बाहरवालों से नही क्योंकि यहां वो विरोध या लड़ाई नही कर पाता। उस की लड़ाई इस स्थान पर अपने से है। आपसी प्रेम का एक अद्वितीय बंधन की डोर को जो व्यक्ति हृदय से शुद्ध और सात्विक होगा, वही महसूस कर सकता है।

यद्यपि अर्जुन का निरीक्षण अगले श्लोक में भी पढ़ेंगे किंतु यह समझ लेना जरूरी है कि ज्ञान का प्राकृतिक होना और आत्मसात होना में अंतर है। पठन या श्रवण के बाद यदि चिंतन और मनन नही किया जाए, तो वह ज्ञान अज्ञान के ही समान होता है। जिस क्षण हमे हमारा घर, धन, दौलत, परिवार और मित्रो को त्याग कर एकांत में जाने को कहा जाए तो हमे इन सब का मूल्य अमूल्य प्रतीत होने लगता है, जो हमारे निर्णय को बदलने के लिए प्रर्याप्त होता है। हमारे अंदर का मोह और ममता कभी भी पढ़ी - सुनी बातो से ज्यादा सशक्त होती है।

अर्जुन आगे क्या देखते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.26।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.27॥

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥

"śvaśurān suhṛdaś caiva,
senayor ubhayor api..I
tān samīkṣya sa kaunteyaḥ,
sarvān bandhūn avasthitān"..II

भावार्थ :

कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने ससुरों को और शुभचिन्तकों सहित दोनों तरफ़ की सेनाओं में अपने ही सभी सम्बन्धियों को देखा॥ २७॥

Meaning:

Seeing his kinsmen standing near him, Arjuna, son of Kunti, became overwhelmed with pity, and struck by despair, spoke this.

Explanation:

Shree Krishna's words had the desired effect on Arjun. Looking at the armies on both sides of the battlefield, his heart sank, they were all "Kurus" his relatives. The brave warrior who wanted to punish the Kauravas for all their wickedness a few minutes back suddenly became fearful, his valor started to diminish.

Strong egos are mired in duality. Like bipolar person, a strong ego can go from one emotion to its exact opposite almost instantly. When Arjuna saw the calibre of warriors in the opposing army, his demeanour switched from courage to cowardice in a matter of seconds. And that is why we find it extremely difficult to handle attachment. Because often we do not know that we have the problem of attachment and therefore we are blissfully ignorant and there is no question of taking action against the problem, because we are not aware of the problem. And it is hidden so long, and when it surfaces, it is so powerful that I cannot take any action. Previously because of ignorance, I do not take action and when it surfaces, it is so powerful that I cannot take action. Like many of the addictions or diseases, like cancer, etc. When it is growing inside often, the patient does not know. They say if it is detected early, it can be cured. But cancer seems to be so intelligent, in the initial stage, one does not know; therefore we do not take action and when it becomes manifest, we cannot take action.

Why did this happen? When one is under the control of the ego rather than the rational intellect, one's emotional balance is extremely vulnerable. All it took to destabilize his balance was for Shri Krishna to highlight Arjuna's kinsmen in the army.

This verse also shows that no one is immune from the workings of the ego. Arjuna was a well-educated, committed warrior, in fact one of the best warriors on the planet. Even someone as tough as him lost his emotional balance so quickly.

An interesting simile is provided in the Jnyaneshwari for this verse. Just like a sensual man forgets his old girlfriend / wife after being infatuated with a new pretty girl, Arjuna's warrior instincts were replaced with pity for his kinsmen, and cowardice for the war.

।। हिंदी समीक्षा ।।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सेना के दिखाये जाने पर अर्जुन ने शत्रुपक्ष में खड़े अपने सगे सम्बन्धियों को देखा परिवार के ही प्रिय सदस्यों को पहचाना जिन में भाईभतीजे गुरुजन पितामह और अन्य सभी परिचित एवं सुहृद जन थे। शत्रुपक्ष में ही नहीं वरन् उस ने अपनी सेना में भी इसी प्रकार सुपरचित और घनिष्ठ संबंधियों को देखा। संभवत इस दृश्य को देखकर पहली बार एक पारिवारिक कलह के भयंकर दुखदायी परिणाम का अनुमान वह कर सका जिस से उसका अन्तरतम तक हिल गया। एक कर्मशील योद्धा होने के कारण संभवत अब तक उसने यह सोचा भी नहीं था कि अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरी करने और दुर्योधन के अन्यायों का बदला लेने में सम्पूर्ण समाज को किस सीमा तक अपना बलिदान देना होगा।

अर्जुन भी पारिवारिक परिवेश में भावुकता के साथ पला बड़ा था। कौन मनुष्य धन या जमीन के टुकड़े के लिए अपने गुरु, मातपिता तुल्य अपने से बड़े लोग, भाई, बंधु, मित्र आदि की हत्या कर सकता है। किंतु कंस की हत्या करते समय भगवान कृष्ण भी लोकसंग्रह का ही कार्य कर रहे थे, चाहे वे उस के मामा ही क्यों न थे। युद्ध तो अन्याय के विरुद्ध ही शुरू हुआ, परंतु इस में जो भी पक्ष - विपक्ष में है, वे सब अपने है। उन से कैसे युद्ध होगा ? जीव कितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो, एक बार प्रकृति की माया के चंगुल में फस जाए तो संसार की प्रत्येक वस्तु में वह मैं अर्थात मेरा जेड मेरा ही जीवन पर्यंत तलाशता रहता है।

कारण जो कुछ भी रहा हो लेकिन यह स्पष्ट है कि इस दृश्य को देखकर उस का अहम और युद्ध करने का क्षत्रिय गुण गिर कर उसका हृदय करुणा और विषाद से भर गया। परन्तु इस समय की उस की करुणा स्वाभाविक नहीं थी। यदि उस में करुणा और विषाद की भावनायें गौतम बुद्ध के समान वास्तविक और स्वाभाविक होतीं तो युद्ध के बहुत पूर्व ही वह भिन्न प्रकार का व्यवहार करता। संजय का अर्जुन की इस भावना को करुणा नाम देना उपयुक्त नहीं है। साधारणत मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह अपनी दुर्बलताओं को कोई दैवी गुण बताकर महानता प्राप्त करना चाहता है जैसे कोई धनी व्यक्ति स्वयं के नाम पर मन्दिर निर्माण करता है तोे भी उस को दानी कहते हैं जबकि उस के मन में अपना नाम अमर करने की प्रच्छन्न इच्छा होती है। इसी प्रकार यहाँ भी अर्जुन के मन में विषाद की भावना का उदय उसके मनसंयम के पूर्णतया बिखर जाने के कारण हुआ जिसका गलती से करुणा नाम दिया गया।वास्तविक शब्द विषाद ही है क्योंकि अपने की परिवार वालो से जिन के आप के हृदय में प्रेम, सम्मान, आदरभाव है, जिन की क्षत्रछाया में जीवन जिया हो, उन के विरुद्ध युद्ध करना और उन की हत्या करना, हृदय में क्षोभ एवम विषाद ही पैदा करता है।

इस को अगले अध्याय में कायरता कहते हुए, भगवान् ने आगे कश्मलम् तथा हृदयदौर्बल्यम् कहा है और अर्जुन ने कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः कह कर इस को स्वीकार भी किया है। अतः इस को कायरता ही कहना चाहिए।

अर्जुन कायरता से आविष्ट हुए हैं इस से सिद्ध होता है कि यह कायरता पहले नहीं थी प्रत्युत अभी आयी है। अतः यह आगन्तुक दोष है। आगन्तुक होने से यह ठहरेगी नहीं। परन्तु शूरवीरता अर्जुन में स्वाभाविक है अतः वह तो रहेगी ही।

अत्यन्त कायरता क्या है बिना किसी कारण निन्दा तिरस्कार अपमान करनेवाले दुःख देने वाले वैरभाव रखने वाले नाश करने की चेष्टा करने वाले दुर्योधन दुःशासन शकुनि आदि को अपने सामने युद्ध करने के लिये खड़े देखकर भी उन को मारने का विचार न होना उन का नाश करने का उद्योग न करना यह अत्यन्त कायरता रूप दोष है। यहाँ अर्जुन को कायरता रूप दोष ने ऐसा घेर लिया है कि जो अर्जुन आदि का अनिष्ट चाहने वाले और समय समय पर अनिष्ट करने का उद्योग करने वाले हैं उन अधर्मियों पापियों पर भी अर्जुन को करुणा आ रही है और वे क्षत्रिय के कर्तव्यरूप अपने धर्म से च्युत हो रहे हैं।

अर्जुन के मन में असंख्य दमित भावनाओं का एक लम्बा सिलसिला था जो सक्रिय रूप से शक्तिशाली बनकर व्यक्त होने के लिये अवसर की खोज कर रहा था। इस समय अर्जुन के मन तथा बुद्धि परस्पर वियुक्त हो चुके थे क्योंकि स्वयं को सर्वश्रेष्ठ वीर समझने के कारण उसके मन में युद्ध में विजयी होने की प्रबल आतुरता थी। पूर्व की दमित भावनायें और वर्तमान की विजय की व्याकुलता के कारण उसकी विवेक बुद्धि विचलित हो गयी।

इस अध्याय में आगे वर्णन है कि अर्जुन एक असंतुलित मानसिक रोगी के समान व्यवहार करने लगता है। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुनरोग से पीड़ित व्यक्ति के रोग का इतिहास बताने का प्रयत्न किया गया है।

किसी भी ज्ञान के उदय के लिये यह आवश्यक है, जिन सामाजिक, आध्यात्मिक, एवम व्यवहारिक ज्ञान के कारण किसी व्यक्ति में आत्मविस्वास है, उस पर कोई ऐसी चोट पहुचे कि उसे यह महसूस हो कि मुझे अब किसी गुरु की आवश्यकता है। अन्यथा आत्मविस्वास से भरे किसी भी व्यक्ति को आप कितना भी ज्ञान दो, वह चिकने घड़े पर पानी डालने के समान है।

अर्जुन की यह स्थिति ही गीता के ज्ञान का सूत्रपात है।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.27।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.28-30॥

अर्जुन उवाच,

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥28।।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते ॥29।।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥30।।

arjuna uvāca,

"kṛpayā parayāviṣṭo,
viṣīdann idam abravīt..।
dṛṣṭvemaṁ sva-janaṁ kṛṣṇa,
yuyutsuṁ samupasthitam"।।28।।

"sīdanti mama gātrāṇi,
mukhaṁ ca pariśuṣyati..।
vepathuś ca śarīre me,
roma-harṣaś ca jāyate"।।29।।

"gāṇḍīvaṁ sraṁsate hastāt,
tvak caiva paridahyate..।
na ca śaknomy avasthātuṁ,
bhramatīva ca me manaḥ"।।30।।

भावार्थ :

तब करुणा से अभिभूत होकर शोक करते हुए अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण! युद्ध की इच्छा वाले इन सभी मित्रों तथा सम्बन्धियों को उपस्थित देखकर। मेरे शरीर के सभी अंग काँप रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है, और मेरे शरीर के कम्पन से रोमांच उत्पन्न हो रहा है। मेरे हाथ से गांडीव धनुष छूट रहा है और त्वचा भी जल रही है, मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़ा भी नही रह पा रहा हूँ॥ २८-३०॥

Meaning:

O Krishna, I see my kinsmen gathered here to fight. My limbs are weakening, and my mouth has completely dried up, my body is quivering and my hair is standing on end. My Gaandeeva bow is slipping from my hands, my skin is burning, I am unable to stand and cannot think clearly.

Explanation:

After his mind was thrown off balance, Arjuna experienced a full-scale panic attack. In these verses, Arjuna described his symptoms to Shri Krishna, beginning first with his physical symptoms and in later verses, his mental and emotional symptoms.

In the materialistic concept, we consider ourselves to be only the body, which is emotionally attached to all its bodily relatives. As this attachment is based on ignorance it carries with it the physical burdens of life like pain, sorrow, grief, and death. Only the death of the physical body can end these materialistic attachments. We are more than just the physical body; our eternal souls are beyond life and death.

It is rare that one gets to see a blow-by-blow account of a nervous breakdown in a spiritual text. But as we have seen, the Gita is not just a spiritual text but also an extremely practical text.

This is not Arjuna's problem; but this is the universal problem. Only the object of attachment varies, the problem of attachment is universal. And here Vyasacarya wants to show that since attachment was intense, the grief also was intense. And when the mind is intensively afflicted, that suffering will erflow into the physical body also. So if it is a milder problem, we can cover up. We will keep only in the mind and outwardly we can pretend as though everything is fine, we can smile, we can forget it; mind is different and body is different, but when the emotions are intense, it will overflow into the physical body.

You can note this word repeated several times in the first chapter; this is another crucial word of the first chapter, svajana, means my people. And there is nothing wrong in claiming some people as my people. After all we are worldly people, and we belong to someone, and many people belong to us; it is fine. But when the sense of belonging becomes attachment and when the attachment begins to cloud the intellect, we begin to confuse between Dharma and Adharma. Until now, Arjuna said that on the opposite, there were Dhātarāṣtra, who were all durbuddhe. See how it changes. Earlier he said this, perhaps biting his teeth."These people are terrible ones, they have all joined Duryōdhana who is Adhārmic person". Until now, he saw those people as Adhārmic people; therefore requiring punishment. Which means he had Dharma- adharma viveka buddhi is functioning.

But now Arjuna has slipped from buddhi-level to mind-level. Rational level to emotional level. Therefore instead of calling them Adhārmic people, now he is calling them “they are all my own people”. That means what? If 'our people' do the adharma, it is OK. If it is someone else, punishment is called for. This is called wrong judgment. And Arjuna is getting into problem which indicated by the word, 'svajanam' sva means mamakāra. My people.

Any emotional problem is a thought, built up, not a single thought. Single thought is not a sorrow. Single thought is not anger. Single thought is not jealousy. Single thought is not depression. So therefore, all these emotions require our cooperation. What is our cooperation? We provide the condition, ideal condition. Sitting in the beach, we built up the worry-thought and from this we also get another important clue, all emotional breakdowns can be handled, if you are able to take care of

the second thought. First thought is not in our hands. It happens. Somebody has insulted me. First thought is an experience. But thereafterwards, whether I should repeat it or not, is in my hands and if I choose not to repeat it, then it cannot conquer me; but if I allow that thought, like a ripple becoming a wave. Ripple is a weak but a wave is too powerful. Arjuna also has allowed the ripple of that thought to become a huge wave and it has overpowered and therefore his powerful hands, which has destroyed millions of asurās, that hand is not able to hold even that gāṇḍīvaṁ.

The rest of the chapter will look at what statements Arjuna or any individual will make when undergoing a highly disturbed emotional state. Many commentaries do not give importance to these verses. However, I think they are instructive for a variety of reasons, the primary one being that when we undergo such disturbed emotional states, we lose the objectivity to see clearly what is happening to us and perhaps stay alert for such symptoms.

।। हिंदी समीक्षा ।।

धृतराष्ट्र ने पहले समवेता युयुत्सवः कहा था और यहाँ अर्जुन ने भी युयुत्सुं समुपस्थितम् कहा है परन्तु दोनों की दृष्टियों में बड़ा अन्तर है। धृतराष्ट्र की दृष्टि में तो दुर्योधन आदि मेरे पुत्र हैं और युधिष्ठिर आदि पाण्डुके पुत्र हैं ऐसा भेद है अतः धृतराष्ट्र ने वहाँ मामकाः और पाण्डवाः कहा है। परन्तु अर्जुन की दृष्टि में अब यह भेद नहीं है अतः अर्जुन ने यहाँ स्वजनम् कहा है जिस में दोनों पक्ष के लोग आ जाते हैं। तात्पर्य है कि धृतराष्ट्र को तो युद्ध में अपने पुत्रों के मरने की आशंका से भय है शोक है परन्तु अर्जुन को दोनों ओर के कुटुम्बियों के मरने की आशंका से शोक हो रहा है कि किसी भी तरफ का कोई भी मरे पर वह है तो हमारा ही कुटुम्बी होगा ।

विवेक बुद्धि पर जब मोह बुद्धि का आवरण छा जाता है तो धृतराष्ट्र या अर्जुन में कोई विभेद नही होता। एक स्वार्थ और लोभ में अपना और पराया में विभेद करता है और दूसरा मोह या ममता बुद्धि में अपने और पराए में विभेद नही करता। किंतु दोनो ही अपने मोह या स्वार्थ में धर्म और न्याय को भूल चुके होते है।

आज भी कुछ लोग परिवार का अर्थ पति-पत्नी एवम अपने बच्चों तक ही सीमित रखते है, जब जिन के मन मे करुणा एवम स्नेह हो उस के परिवार का अर्थ वो समस्त जन होते है, जिन के संग उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया हो। यह भौतिक शरीर ही जीवन का प्रतीक बन जाता है, इस के सुख और दुख के साथ जीवन व्यतीत होने लगता है और जीवन क्योंकि शाश्वत नही है, इसलिए इस शरीर के छूटने को समाप्ति मान कर हम अपने अस्तित्व की भी समाप्ति मान लेते है। जो धन संपदा, घर परिवार, सुख सुविधाओं का संचय जीवन पर्यंत करते है, वह सब इस शरीर की समाप्ति पर छूट जाती है।

यथार्थ भक्ति से युक्त मनुष्य में वे सारे गुण रहते है जो सत्पुरुषों या देवताओ में पाए जाते है जबकि अभक्त या भौतिक जीवन जीने वाले अपनी शिक्षा या संस्कृति के द्वारा भौतिक योग्यताओ में चाहे कितने भी उन्नत क्यों न हो, ईश्वरीय गुणों से विहीन ही होते है। अर्जुन का यही गुण भी एक कारण था कि उसे गीता के उपदेश के योग्य पाया गया।

दुर्योधन का युद्ध की ओर देखना तो एक तरह का ही रहा अर्थात् दुर्योधन का तो युद्ध का ही एक भाव रहा परन्तु अर्जुन का देखना दो तरह का हुआ। पहले तो अर्जुन धृतराष्ट्र के पुत्रों को देखकर वीरता में आकर युद्ध के लिये धनुष उठा कर खड़े हो जाते हैं और अब स्वजनों को देखकर कायरता से आविष्ट हो रहे हैं युद्ध से उपरत हो रहे हैं और उन के हाथ से धनुष गिर रहा है।

अर्जुन के मन में युद्ध के भावी परिणाम को लेकर चिन्ता हो रही है दुःख हो रहा है। उस चिन्ता दुःख का असर अर्जुन के सारे शरीर पर पड़ रहा है। उसी असर को अर्जुन स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि मेरे शरीर का हाथ पैर मुख आदि एकएक अङ्ग (अवयव) शिथिल हो रहा है मुख सूखता जा रहा है। जिस से बोलना भी कठिन हो रहा है सारा शरीर थरथर काँप रहा है शरीर के सभी रोंगटे खड़े हो रहे हैं अर्थात् सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा है जिस गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कारबसे शत्रु भयभीत हो जाते हैं वही गाण्डीव धनुष आज मेरे हाथ से गिर रहा है त्वचा में सारे शरीर में जलन हो रही है । मेरा मन भ्रमित हो रहा है अर्थात् मेरे को क्या करना चाहिये यह भी नहीं सूझ रहा है यहाँ युद्धभूमि में रथ पर खड़े रहने में भी मैं असमर्थ हो रहा हूँ ऐसा लगता है कि मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ूँगा ऐसे अनर्थकारक युद्ध में खड़ा रहना भी एक पाप मालूम दे रहा है।

ध्यान देने योग्य बात है कि मन मस्तिक के स्नायु कैसे काम करते है, यह आंख, कान, जिह्वा, स्पर्श एवम वाणी से सूचना ग्रहण करते है, जो मस्तिक तक पहुच कर संस्कार, ज्ञान एवम आचार द्वारा निर्धारित कर के पूरे शरीर को पहुचाई जाती है और क्षण भर में शरीर एक्शन में आ जाता है, अर्जुन से योद्धा भावुक हो इतना कमजोर महसूस कर रहा है जिस का कारण उस का भावनात्मक दृष्टिकोण में प्ररिवर्तन मात्र है। हम में से लगभग यह स्थिति का अनुभव कम या ज्यादा किया ही होगा।

अतः यह स्पष्ट है शरीर का बल, धैर्य, क्षमता एवम कर्म व्यक्ति के मानसिक विचारों एवम संस्कारो पर निर्भर है। एक मशीन जितनी भी मजबूत हो, उस का बल उस को घुमाने वाली शक्ति पर निर्भर है, वैसे ही मनुष्य की शक्ति उस के विचारों पर निर्भर होती है। मनोविज्ञान का सशक्त चित्रण गीता के प्रथम अध्याय में हमारी ही जीवन शैली का चित्रण है, रोजमर्रा की जिंदगी में घर परिवार के प्रति जिम्मेदारियां, मोह, ममता और स्वार्थ हमे स्वाध्याय के लिए तैयार नहीं होने देता, लोग गीता या अन्य कोई ग्रंथ या तो पढ़ते ही नही है या फिर पढ़ते भी है तो सांसारिक सुख पाने की आशा में। क्या हम सब में अर्जुन की भांति स्थितिप्रज्ञ होने की स्थिति में मोह - ममता के छूटने का भय नहीं है? प्रथम अध्याय में अभी अर्जुन की मानसिक दशा को और भी विस्तार से जानेंगे, क्योंकि अध्यात्म का ज्ञान भी उसे ही मिलता है, जो इन सब से मुक्त होने के लिए भगवान की शरण में जाता है। गीता का प्रथम अध्याय का महत्व भी उस परिस्थितियों को बताता है जिस में गीता का ज्ञान होना जरूरी है।

मनुष्य जीवन प्रकृति के पांच कला से युक्त सब से उन्नत रचना है, किन्तु श्रेष्ठता पांच से ज्यादा कला होने से आती है, यह कलाएं छह से सोहला तक होती है, जितनी अधिक कलाये, उतना ही ईश्वरीय प्रदत्त जीवन, इन कलाओं को हम आगे पढ़ेंगे।

अगले श्लोक न केवल उसके मनसंभ्रम को बताते हैं अपितु यह भी स्पष्ट करते हैं कि किस सीमा तक उसका विवेक और नैतिक साहस विनष्ट हो चुका था।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01. 28-30।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.31॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

"nimittāni ca paśyāmi,
viparītāni keśava..I
na ca śreyo 'nupaśyāmi,
hatvā sva-janam āhave"..II

भावार्थ :

हे केशव! मुझे तो केवल अशुभ लक्षण ही दिखाई दे रहे हैं, युद्ध में स्वजनों को मारने में मुझे कोई कल्याण दिखाई नही देता है॥ ३१॥

Meaning:

O Keshava, I see omens that are inauspicious. I also do not see the good in killing my kinsmen in battle.

Explanation:

Any emotional problem is a thought, built up, not a single thought. Single thought is not a sorrow. Single thought is not anger. Single thought is not jealousy. Single thought is not depression. So therefore, all these emotions require our cooperation. What is our cooperation? We provide the condition, ideal condition. Sitting in the beach, we built up the worry-thought and from this we also get another important clue, all emotional break downs can be handled, if you are able to take care of the second thought. First thought is not in our hands. It happens. Somebody has insulted me. First thought is an experience. But thereafterwards, whether I should repeat it or not, is in my hands and if I choose not to repeat it, then it cannot conquer me; but if I allow that thought, like a ripple becoming a wave in ocean.

Arjun had become so disillusioned that superstition started gripping him. He could only see bad omens indicating severe devastation. Thus, he felt it would be a sin to engage in such a battle.

From this it is very clear that half of the bad omens that we have is projected by our own mind. When we are strong, you see good omens; when we become weaker and weaker, the non-existing cat will be crossing your path; single Brahmin; double-Brahmin will cross you in the street when you are going for an important work. When we become weaker and weaker, more you become weaker, the more these things become visible. Similarly Arjuna is also in intense sorrow now. And what is the further consequence of sorrow? Depression. Now Arjuna is going to go through deep depression.

When one's emotions are running unchecked, rationality goes out the window. That's when one starts talking or thinking about irrational things like superstition, which is what Arjuna was alluding to in this verse.

On the surface, one would attribute Arjuna's second statement in this verse to an outpouring of compassion towards his kinsmen. But, would an outpouring of compassion cause a panic attack? The true underlying emotion that caused the panic attack was fear. And what was Arjuna afraid of ? Arjuna was accustomed to winning every war that he fought. When he saw the caliber of warriors in the Kaurava army, his ego felt extremely threatened that maybe this time it won't win. Here we see that Arjuna's ego was trying to deflect this fear by substituting compassion for the true emotion of fear.

।। हिंदी समीक्षा ।।

हे केशव मैं शकुनों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ। तात्पर्य है कि किसी भी कार्य के आरम्भ में मन में जितना अधिक उत्साह (हर्ष) होता है वह उत्साह उस कार्य को उतना ही सिद्ध करनेवाला होता है। परन्तु अगर कार्य के आरम्भ में ही उत्साह भङ्ग हो जाता है मन में संकल्प विकल्प ठीक नहीं होते तो उस कार्य का परिणाम अच्छा नहीं होता। इसी भाव से अर्जुन कह रहे हैं कि अभी मेरे शरीर में अवयवों का शिथिल होना कम्प होना मुख का सूखना आदि जो लक्षण हो रहे हैं ये व्यक्तिगत शकुन भी ठीक नहीं हो रहे हैं, इस के सिवाय आकाश से उल्कापात होना असमय में ग्रहण लगना भूकम्प होना पशुपक्षियों का भयंकर बोली बोलना चन्द्रमा के काले चिह्न का मिट सा जाना बादलों से रक्त की वर्षा होना आदि जो पहले शकुन हुए हैं वे भी ठीक नहीं हुए हैं। इस तरह अभी के और पहले के इन दोनों शकुनों की ओर देखता हूँ तो मेरे को ये दोनों ही शकुन विपरीत अर्थात् भावी अनिष्ट के सूचक दीखते हैं।

मनोविज्ञान का संपूर्ण चित्रण अर्जुन के माध्यम से हम अवसाद में पढ़ पाएंगे, जो यदि विचार किया जाए तो हम कभी भी अवसाद में नही जाएंगे। अवसाद में नकारात्मक सोच को कोई भी नही रोक सकता किंतु एक या दो नकारात्मक सोच आने के बाद यदि उस पर विवेक से विचार किया जाए तो वह सोच समाप्त हो जाती है और अवसाद हमे नही घेरता। आप के किसी मित्र ने जिसे आप बेहद चाहते है, आप का अपमान किया तो हमारे पर निर्भर है कि उस अपमान को हम अपने मन -

मस्तिष्क में कितना स्थान देते है। बार बार उसी बात को सोचने से पुरानी बाते भी नकारात्मक हो कर सामने आती है और हम में उस के प्रति द्वेष में भर देता है और अधिक सोचने पर अपने आत्मविश्वास को क्षति होने लगती है और हमे अपनी क्षमता पर शक होने लगता है। फिर यही मन किसी भी घटना को उस से जोड़ने लगता है। अर्जुन भी इस अवसाद के सागर में डूबने लगा, इसलिए जिन घटनाओं की उस ने कभी परवाह नही की, उस में वह शकुन और अवशकुन ढूंढ रहा है। वह एक न केवल पारंगत योद्धा, अपितु, ज्ञानवान और सात्विक विचारो का व्यक्ति था किंतु अपने लोगो से अत्यधिक राग होने से उन से युद्ध की कल्पना से वह सिहर गया और अपना मानसिक संतुलन खोने लगा।

आत्मविश्वास खोने के बाद किसी भी कार्य को करने का औचित्य भी नजर नहीं आता। इस संसार में रुचि भी नही लगती और अर्जुन की भांति वह भी सोचता है कि युद्ध में अपने कुटुम्बियों को मारने से हमें कोई लाभ होगा ऐसी भी कोई बात नहीं है। इस युद्ध के परिणाम में हमारे लिये लोक और परलोक दोनों ही हितकारक नहीं दिखते। कारण कि जो अपने कुल का नाश करता है वह अत्यन्त पापी होता है। अतः कुल का नाश करने से हमें पाप ही लगेगा जिस से नरकों की प्राप्ति होगी।

इन दोनों वाक्यों से अर्जुन यह कहना चाहते हैं कि मैं शुकुनों को देखूँ अथवा स्वयं विचार करूँ दोनों ही रीति से युद्ध का आरम्भ और उस का परिणाम हमारे लिये और संसारमात्र के लिये हितकारक नहीं दीखता। यह अवसाद मोह या ममता का ही हो जरूरी नहीं, जिन्हे जितना वह शुरू में आसान समझ कर भगवान श्री कृष्ण को रथ युद्ध के मध्य ले जाने को कह रहा था, वहां भीष्म एवम द्रोण जैसे महान योद्धाओं को देख कर वह भयभीत भी हो सकता है और उसे अपनी सफलता पर संदेह भी हो सकता है। इसलिए युद्ध टालने की युक्ति ही ढूंढने लग जाता है।

मैं गलत नही हूं, यह प्रत्येक प्राणी की कमजोरी है, इसलिए वह अपनी झूठी संतुष्टि के लिए तर्क और ज्ञान का सहारा लेता है। जिस में न तो शुभ शकुन दीखते हैं और न श्रेय ही दिखता है ऐसी अनिष्टकारक विजय को प्राप्त करने की अनिच्छा से अर्जुन आगे के श्लोको में अपने तर्क द्वारा अपने अवसाद को संतुष्ट करने का प्रयत्न करते है।

जीव को पूर्ण ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये यदि समस्त सांसारिक मोह, ममता, आसक्ति, अहम का त्याग करना पड़े और उसे पता चले कि इस संसार मे जो कुछ भी दिख रहा है या वह जिन्हें अपने सगे सम्बन्धी मानता है, उन के प्रति आसक्ति, मोह एवम ममता को त्यागना पड़ेगा, तो उस की हालत अर्जुन जैसी ही हो जाएगी। हम ईश्वर के प्रार्थना के नाम पर अक्सर व्यापार करते है और इन सांसारिक सुख सुविधाओ को ही चाहते है। हमारा सत्य मोक्ष प्राप्ति का है ही नही, क्योंकि राग और द्वेष में हमारे सारे कर्म कामना और आसक्ति के ही होते है।

जिसे अपने बाहुबल पर भरोसा था, किन्तु कार्य आरंभ करने से पूर्व सामने एक एक बढ़ कर महारथी या विपत्तियां दिखने लगे तो हार या असफल होने की आशंका जन्म ले लेती है, जिसे हम कायरता या भय भी कहते है। जब हम निराशा के गर्त में गिरने लगते है तो मन विभिन्न आशंकाओं से घिरता है और उस को तर्क संगत बनाने की चेष्टा की जाती है, अर्जुन के माध्यम से इस स्थिति का वर्णन बहुत सही एवम सटीक है, जिसे हम आगे और पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.31।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.32 ॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

"na kāṅkṣe vijayaḿ kṛṣṇa
na ca rājyaḿ sukhāni ca..I
kiḿ no rājyena govinda,
kiḿ bhogair jīvitena vā"..II

भावार्थ :

हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न ही राज्य और सुखों की इच्छा करता हूँ, हे गोविंद! हमें ऐसे राज्य, सुख अथवा इस जीवन से भी क्या लाभ है॥ ३२॥

Meaning:

O Krishna, neither do I desire victory, nor pleasures, nor the kingdom. Of what value is the kingdom, pleasure, or in life itself, O Govinda?

Explanation:

A search for "common symptoms of depression" on the web turns up the following information:

1) Feelings of helplessness and hopelessness. A bleak outlook—nothing will ever get better and there's nothing you can do to improve your situation.

2) Loss of interest in daily activities. No interest in former hobbies, pastimes or social activities. You've lost your ability to feel joy and pleasure.

3) Appetite or weight changes. Significant weight loss or weight gain—a change of more than 5% of body weight in a month.

4) Sleep changes. Either insomnia, especially waking in the early hours of the morning, or oversleeping (also known as hypersomnia).

5) Anger or irritability. Feeling agitated, restless, or even violent. Your tolerance level is low, your temper short, and everything and everyone gets on your nerves.

6) Loss of energy. Feeling fatigued, sluggish, and physically drained. Your whole body may feel heavy, and even small tasks are exhausting or take longer to complete.

7) Self-loathing. Strong feelings of worthlessness or guilt. You harshly criticize yourself for perceived faults and mistakes.

8) Reckless behavior. You engage in escapist behavior such as substance abuse, compulsive gambling, reckless driving, or dangerous sports.

9) Concentration problems. Trouble focusing, making decisions, or remembering things.

10)Unexplained aches and pains. An increase in physical complaints such as headaches, back pain, aching muscles, and stomach pain.

Arjuna was suffering from most of the symptoms from this list. He now was mired in deep, almost suicidal depression, especially because he was questioning the value of life itself.

It is the most unique thing because Vedanta tells that you are the only meaningful thing in the creation and meaning for life or meaning for your existence does not depend upon any external factor at all. But because of ignorance we begin to get associated with the world, with the people, with various activities and we begin to enjoy them and we begin to get more and more interested, we put our heart and soul in that pursuit and we make them meaningful and after some time, it

appears as though they are making our lives meaningful. In fact, we are the one who give meaning to everything else,

Dharma sastra say: purpose of living is not a few people around, the original purpose of living is the spiritual attainment and if you forget that, you get into all these troubles. What Vedanta says is: Nothing can make or give meaning to your life, your life is worth while by itself. You add meaning to life, nothing adds meaning to your life. Let the whole world exist, your life is meaningful. Let the whole world go away, your life is meaningful. Therefore, do not connect the purpose or meaning to anything else at all.

।। हिंदी समीक्षा ।।

बुद्धि से पूर्णतया विलग होकर मनुष्य का भ्रमित मन एक पागल के समान इधरउधर दौड़ता है और मूर्खतापूर्ण निष्कर्षों पर पहुँचता है। वह कहता है मैं न विजय चाहता हूँ न राज्य और न सुख। यह सुविदित तथ्य है कि यदि उन्माद (हिस्टीरिया) के रोगी को बोलने दिया जाय तो वह निषेध भाषा में ही रोग का कारण बताने लगता है। उदाहरणार्थ किसी स्त्री पर उन्माद का दौरा पड़ने पर वह प्रलाप में कहती है कि वह अपने पति से अभी भी प्रेम करती है पति का वह आदर करती है और उन में कोई आपसी मतभेद नहीं है इत्यादि तो इन वाक्यों द्वारा वह स्वयं ही अपने रोग का वास्तविक कारण बता रही होती है।

इसी प्रकार अर्जुन यह जो सब वस्तुओं की अनिच्छा प्रकट कर रहा है उसी से हम उसकी मनस्थिति का स्पष्ट कारण जान सकते हैं कि वह विजय चाहता था। वह शीघ्र ही अपने एवं स्वजनों के लिये राज्य व सुख प्राप्त करने के लिये आतुर था। परन्तु कौरवों की विशाल सेना और उन में जाने माने शूर वीर योद्धाओं को देख कर उस की आशा भंग हो गयी महत्त्वाकांक्षा ध्वस्त हो गयी और वह आत्मविश्वास भी खोने लगा। इस प्रकार वह धीरे धीरे अर्जुन रोग रूपी विषाद की स्थिति में पहुँच गया जिस के निवारण का विषय ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है।

आंतरिक ज्ञान के अभाव में व्यक्ति भावावेश में बात करता है, अर्जुन के पल पल बदलते चरित्र में आज का मनुष्य भी दिखाई देगा जो चाहता कुछ है और बोलता कुछ और TV पर अक्सर बहस को देखते है, जब राजनीतिक पार्टी प्रवक्ता कोई भी बहस करता है या जवाब देता है तो वो सिर्फ अपनी पार्टी को सही सिद्ध करता है जब कि वो भी जानता है कि उस के तर्क के पीछे भाव या सचाई क्या है।

अंतर्मन के ज्ञान के अभाव में शाब्दिक ज्ञान मन की अवसाद अवस्था मे, ज्यादा तर्कपूर्ण एवम त्याग के होते है। यह अवसाद किसी कार्य को न कर पाने की क्षमता को स्वयं सिद्ध करने की चेष्टा होती है, जिस में व्यक्ति किसी भी तरह अपने को शाब्दिक ज्ञान द्वारा अपने भय, मोह, कायरता एवम अपनी छुपी हुई कामना को तर्क से सही ठहराता है। अर्जुन श्रेष्ठ योद्धा एवम ज्ञानी होते हुए भी, अपने सामने विशाल सेना को देख कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में संदेह करने लगा, तो उस का भी मानसिक संतुलन बिगड़ने लगा।

अवसाद में त्याग की परिभाषा मोह से जुड़ी होती है, हमारे अंदर का मोह, लालसा और भय हमारे त्याग, अपने लोगो के प्रति आदर सत्कार, प्रेम के स्वरूप में प्रकट होता है। यदि वह वास्तव में हृदय में होता तो अर्जुन युद्ध की तैयारी से पूर्व दुर्योधन को धृतराष्ट्र के दुर्बुद्धि पुत्र के संबोधन से नही बुलाता। अर्जुन का सांसारिक वस्तु से आसक्ति और प्रेम भी वेदांत के ज्ञान की शिक्षा के विरुद्ध ही है, जो यह बताता है जो हम पढ़ते है और जो हम ग्रहण करते है उस में अंतर हमारी आस्था, विश्वास और दृढ़ संकल्प के परिमाण के अनुसार होता है।

अर्जुन के चरित्र को आगे और विस्तृत रूप में बताया गया है कि अलाप में व्यक्ति कैसे कैसे बाते करने लगता है और हमारी आसक्ति और कामना की जड़े कितनी गहरी होती है, जिस के कारण मोक्ष की बाते करना जितना सरल है, उस से अधिक कठिन उस अवस्था को प्राप्त करना है।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.32।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.33 ॥

येषामर्थे काङक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥

"yeṣām arthe kāṅkṣitaṁ no,
rājyaṁ bhogāḥ sukhāni ca..I
ta ime 'vasthitā yuddhe,
prāṇāṁs tyaktvā dhanāni ca"..II

भावार्थ :

जिन के साथ हमें राज्य आदि सुखों को भोगने की इच्छा हैं, जब वह ही अपने जीवन के सभी सुखों को त्याग कर के इस युद्ध भूमि में खड़े हैं॥ ३३॥

Meaning:

Those, for whose sake we seek kingdom, enjoyment and happiness, are present here in war, ready to give up their desire for life and wealth.

Explanation:

Here Arjuna continues his fall into delusion by justifying why there is no point in living, or in carrying out the mission that he had committed to carry out. In his confused state, his mind mixed up his personal relationships with his mission-wise relationships.

Here also we find how Arjuna has forgotten the original purpose of Mahabharatha battle. Now he says, purpose of Mahabharatha battle is to get all the pleasures and to give these pleasures to Bhiṣma, Droṇa, etc. Like that I want to accomplish all these things and to dedicate them to Bhishma and Drona and such people are going to be destroyed. Here, you find how Arjuna's mind is clouded. The purpose of Mahabharatha war is not getting the kingdom and handing over to Bhiṣma and Droṇa. Very purpose of Mahabharatha war is fighting Adharma and whoever has joined Adharma, they have to be destroyed and if Bhiṣma and Droṇa have unfortunately joined them, they also have to be destroyed. This vision was very clear before.

Detachment to worldly assets is a commendable virtue. Even though Arjun’s thoughts were moral and virtuous, they were not spiritual sentiments. They were budding out of compassion and attachment towards his relatives. Spiritual sentiments bestow peace, harmony, and happiness to a soul. However, Arjun’s situation was not such he was disillusioned, confused, and losing control over his body and mind.

In work, we are often asked to "not take things personally". Here we see an example of what happens when someone in war inserts personal aspects of his life into his work, resulting in complete confusion and breakdown of the mission.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सर्वसदाहरण जिन लौकिक सुखों को चाहता है उन्हें हम निम्न प्रकार मान सकते है।

1) सर्वदा द्रव्य का आगमन होना,

2) सुंदर, प्रिय एवम मधुरभाषणी भार्या एवम मेधावी और आज्ञाकारी पुत्र होना

3) हमेशा आरोग्य रहना,

4) अर्थकरी विद्या से उन्नत व्यवसाय एवम व्यापार होना,

5) समाज मे प्रतिष्ठा, सम्मान एवम उच्च स्थान होना एवम

6) बंधु बांधव एवम मित्रो का साथ एवम सहयोग होना।

दुख परमात्मा की अनुकंपा से प्राप्त होता है, यह अर्जुन का विषाद भी उन्ही में एक है, इस के कारण अर्जुन के मन और हृदय के भाव प्रकट होने लगते है कि आध्यात्म और प्रकृति या संसार से हमारा अंत:करण का किस प्रकार का बंधन है।

युद्ध में अर्जुन दुर्योधन के विरुद्ध उस की अनीतिपूर्ण निर्णय के लिए खड़ा हुआ था, वह यह सब भूल कर व्यक्तिगत अपने संबंधों और व्यवहार को देखने लगा। इसलिए उसे भीष्म और द्रोण जो अन्याय के साथ खड़े है, उन से अपने संबंध न्याय के लिए या धर्म के युद्ध से ज्यादा महत्व पूर्ण दिखने लगे।

अर्जुन कहते है, हम राज्य सुख भोग आदि जो कुछ चाहते हैं उन को अपने व्यक्तिगत सुख के लिये नहीं चाहते प्रत्युत इन कुटुम्बियों प्रेमियों मित्रों आदि के लिये ही चाहते हैं। आचार्यों पिताओं पितामहों पुत्रों आदि को सुख आराम पहुँचे इन की सेवा हो जाय ये प्रसन्न रहें इस के लिये ही हम युद्ध करके राज्य लेना चाहते हैं भोग सामग्री इकट्ठी करना चाहते हैं।

विषाद में अर्जुन के अहम, फिर मोह और अब अवसाद में उस के आसक्ति को हम समझ रहे है, बस कल्पना करे यदि आप अर्जुन की जगह हो, आप का घर में भाईयो से झगड़ा हो गया, वह सारी संपत्ति लेना चाहता है आप के घर सभी बुजुर्ग उस के साथ है, तो क्या आप भी इस विषाद से मुक्त हो पाएंगे है। यदि नहीं तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी। गीता का अध्ययन अपने सही दिशा में बढ़ रहा है तो इस का अनुभव भी तभी होगा, जब आप अर्जुन की भांति अपने मोह, ममता, अहम को पहचानने की कोशिश करे। गीता पढ़ने वाले अक्सर कृष्ण का स्थान ले कर प्रवचन देने लगते है, किंतु उन का अहम, मोह और ममता वैसा का वैसा रह जाता है, इसलिए आवश्यकता अर्जुन के स्थान को ग्रहण कर के हम अपना अवलोकन करे। क्या हम सांसारिक सुखों से संतुष्ट है या हमे वास्तव में मोक्ष चाहिए। जब तक मोक्ष की पीड़ा हृदय की गहराई तक नही जाएगी तब तक परमात्मा भी मोक्ष का ज्ञान नहीं देगे। भगवान श्रीकृष्ण भी अर्जुन के इतना विषाद करने पर शांत ही है। इसलिए अर्जुन के विषाद को अपने अंदर महसूस करे और उस के साथ साथ चलते चले।

अर्जुन का आगे कहना है जिन के लिये सुख की आशा है, वे ही ये सब के सब अपने प्राणों की और धन की आशा को छोड़कर युद्ध करने के लिये हमारे सामने इस रणभूमि में खड़े हैं। इन्होंने ऐसा विचार कर लिया है कि हमें न प्राणों का मोह है और न धन की तृष्णा है हम मर बेशक जायँ पर युद्ध से नहीं हटेंगे। अगर ये सब मर ही जायँगे हमें राज्य किस के लिये चाहिये सुख किस के लिये चाहिये धन किस के लिये चाहिये अर्थात् इन सब की इच्छा हम किस के लिये करें।

वे प्राणों की और धन की आशा का त्याग कर के खड़े हैं अर्थात् हम जीवित रहेंगे और हमें धन मिलेगा इस इच्छा को छोड़कर वे खड़े हैं। अगर उन में प्राणों की और धन की इच्छा होती तो वे मरने के लिये युद्ध में क्यों खड़े होते अतः यहाँ प्राण और धन का त्याग करने का तात्पर्य उन की आशा का त्याग करने में ही है।

मन से हर व्यक्ति अपने को सही सिद्ध करने के तर्क का सहारा लेता है, श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन की घबराहट पर कोई प्रतिक्रिया न होने पर अर्जुन यह श्री कृष्ण को प्रभावित करने के किये तर्क पर आ गया। सामान्य जीवन मे किसी भी काम मे फैल होने पर या नही करने पर कौन कहता है कि वो गलत है, हर व्यक्ति किसी न किसी तरह अपनी हताशा का उचित तर्कसंगत उत्तर से अपने को संतुष्ट एवम दूसरे को प्रभावित करता है।

शंकराचार्य जी के अनुसार मन अध्यास से सभी से सुख की आसक्ति के कारण अपना सम्बन्ध बना कर जुड़ जाता है, फिर उस अध्यास को तर्क युक्त बना कर सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करने लग जाता है। आज भी लोग भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, युधिष्ठर, द्रोपति आदि के चरित्र की विवेचना करते है किंतु अर्जुन के विषाद को नही समझ पाते।

भगवान श्रीकृष्ण के कुछ भी न बोलने पर अर्जुन भी आगे दो तीन श्लोक में वही तर्क से अपने को सही ठहराने का प्रयास कर रहा है।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.33।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.34-35॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥34॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥35॥

"ācāryāḥ pitaraḥ putrās,
tathaiva ca pitāmahāḥ..I
mātulāḥ śvaśurāḥ pautrāḥ,
śyālāḥ sambandhinas tathā"..II34II

"etān na hantum icchāmi,
ghnato 'pi madhusūdana..I
api trailokya-rājyasya,
hetoḥ kiṁ nu mahī-kṛte"II35II

भावार्थ :

गुरुजन, परिवारीजन, पुत्रगण, पितामह, मामा, ससुर, पौत्रगण, साले और सभी सम्बन्धी भी मेरे सामने खड़े है।

हे मधुसूदन! मैं इन सभी को मारना नहीं चाहता हूँ, भले ही यह सभी मुझे ही मार डालें, तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सभी को मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है? ॥ ३४-३५॥

Meaning:

Teachers, uncles, fathers, sons, as well as grand-uncles, maternal uncles, fathers-in-law, brothers-in-law and other relatives are here. Although they would like to kill me, I don't want to attack them, O Madhusoodana. When I won't do so even if it would win me all the three worlds, what to speak of winning just this earth?

Explanation:

We notice here that Arjuna essentially repeated his argument that he does not want to attack anyone in this war, since anyone he attacks is bound to be either a friend or a relative. But why was he repeating his arguments? Note that in each verse, he addressed Shri Krishna directly, hoping to

get some sort of support or endorsement from him. But, Shri Krishna did not say one word, since he wanted to wait till Arjuna's delusionary outburst ended. In emotion, it is not necessary every statement given by person is outburst from his emotion only, when he does not get support from listner, he may give statement more emotional, moral or ethical to impress him under dual personality. It is weakest point of a person, to get support from other person/s for his action as justified or correct.

Anybody who is becoming sorrowful and depression like that broken gramaphone record, they will repeat it. Extremely difficult to handle, If a person has to face a situation the only thing is the person must be prepared before any such tragedy comes. Actually when the problem comes, it is very difficult and uncontrolable. That is why they say, have the Lord, have devotion, have all those things before hand itself. Always preparation is better than shock.

It look as though compassion, it is very difficult to distinguish what is attachment and what is compassion. We may think that Arjuna has compassion. In attachment, a person's vision of Dharma and Adharma gets clouded. Compassion's greatness however much it comes; however much a person is disturbed by compassion, he will not violate Dharma. Similarly, here also, if at all Arjuna shows compassion, it is a misplaced compassion and therefore it is a problem of Rāgaḥ alone. More details we will be seeing later.

Twice in this verse, Arjun used the word api which means “even though.” He addresses Shree Krishna as Madhusudan, the killer of a demon named Madhu and says, “O Madhusudan, I do not wish to kill them even though I am aware they are eager to do so.” Again, he says, “Even though for the sake of victory over the three worlds we fight, what joy would we get by killing our own folks?”

In the second verse about not desiring victory in the three worlds, Arjuna tried to justify his retreat from fighting by wrapping his cowardice in a cloak of fake large-heartedness. The ego can sometimes be more cunning than any politician. It is sign of dual characteristics of any individual personality.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यदि किसी व्यक्ति की व्यथा पर सुननेवाला अपनी कोई प्रतिक्रिया न दे, तो व्यथा सुनाने वाले हताश होने लगता है और बार बार वही बात और भी भावुकता के साथ कहने लगता है। अर्जुन भी रिश्तों के नाम के साथ पुनः अपनी बात दोहराते है। अवसाद में घिरे व्यक्ति के बारे में यह कहना कठिन है कि वह अपनी व्यथा सुनाते हुए क्या बोल दे। अर्जुन भी कुछ ऐसा ही युद्ध भूमि में कायरो जैसी बात कर रहे है।

"अगर हमारे ये कुटुम्बीजन अपनी अनिष्ट निवृत्ति के लिये क्रोध में आकर मेरे पर प्रहार कर के मेरा वध भी करना चाहें तो भी मैं अपनी अनिष्ट निवृत्ति के लिये क्रोध में आकर इन को मारना नहीं चाहता। अगर ये अपनी इष्टप्राप्ति के लिये राज्य के लोभ में आकर मेरे को मारना चाहें तो भी मैं अपनी इष्टप्राप्ति के लिये लोभ में आकर इन को मारना नहीं चाहता। तात्पर्य यह हुआ कि क्रोध और लोभ में आकर मेरे को नरकों का दरवाजा मोल नहीं लेना है।"

यहाँ दो बार अपि पदका प्रयोग करने में अर्जुन का आशय यह है कि मैं इन के स्वार्थ में बाधा ही नहीं देता तो ये मुझे मारेंगे ही क्यों पर मान लो कि पहले इस ने हमारे स्वार्थ में बाधा दी है ऐसे विचार से ये मेरे शरीर का नाश करने में प्रवृत्त हो जायँ तो भी मैं इन को मारना नहीं चाहता। दूसरी बात इन को मारने से मुझे त्रिलोकी का राज्य मिल जाय यह तो सम्भावना ही नहीं है पर मान लो कि इन को मारने से मुझे त्रिलोकी का राज्य मिलता हो तो भी मैं इनको मारना नहीं चाहता।

हताशा या कायरता जब चरम सीमा पर पहुच जाती है तो मनुष्य अपनी छवि को बरकार रखने के चतुराई पूर्ण तर्कों एवम अपने त्याग की भावनाओ से दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश करता है, अर्जुन की यह कोशिश की भले ही यह मुझे

मार दे मैं इन्हें नही मारूंगा सिर्फ और सिर्फ कृष्ण को प्रभावित करने की है कि वो महान योद्धा होते हुए भी इतना बड़ा त्याग करने को तैयार है। इस का कारण है कि अर्जुन का अपने संबंधियों से सहानुभूति थी, किंतु यह सहानुभूति मोह या राग में परिवर्तित होती नही दिखती। सहानुभूति में धर्म और न्याय के अनुसार व्यक्ति अपने विवेक से कार्य करता है किंतु राग या मोह होने से विवेक समाप्त हो जाता है और व्यक्ति राग या मोह में धर्म और न्याय की बात नहीं सोचता। इसलिए वह आवेश में युद्ध नही करूंगा चाहे उसे तीनो लोक का भी राज्य मिले की बाते कर रहा है। अर्जुन यह बाते आवेश में कर रहा है, क्योंकि मोह में तो वह शुरुवात से युद्ध की तैयारी नही करता।

अर्जुन भगवान कृष्ण को संबोधित करते हुए मधुसूदन शब्द बोल कर शायद यह कहना चाहता है कि दैत्य मधु का वध करना अपने स्वजनों की अपेक्षा सरल कार्य है।

दैनिक जीवन मे जब कर्तव्य च्युक्त व्यक्ति ऊंची ऊंची बाते करता है और अपने कार्य को नही करने का कारण उचित बताने की कोशिश करता है तो निश्चय की वो सामने वाले को उस के मूल्य के अनुसार तोलता है।

अर्जुन की यह मानसिकता आज के घरेलू झगड़ो में अक्सर आती है, जब घर का कोई सदस्य अपने स्वार्थ के लिये किसी को नुकसान पहुचाता है, तो अन्य सदस्य यही सोच कर पीछे हट जाता है कि उस से लड़ाई करने से परिवार एवम समाज में बदनामी ही होगी। चाहे लोगो की नजर में भी उस की छवि में उस का त्याग भी भले स्वरूप से हट कर स्वार्थी का हो जाए कि उस ने यह कार्य किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए किया होगा ।

अर्जुन की भांति वह व्यक्ति भी यही दर्शाना चाहता है कि वह इतना उदार हृदय है कि उसके चचेरे भाई उसको मार भी डालें तो भी वह उन्हें मारने को तैयार नहीं होगा। अतिशयोक्ति की चरम सीमा पर वह तब पहुँचता है जब वह घोषणा करता है कि त्रैलोक्य का राज्य मिलता हो तब भी वह युद्ध नहीं करेगा फिर केवल हस्तिनापुर के राज्य की बात ही क्या है।

निराशा और अवसाद से घिरे व्यक्ति का मनोविज्ञान उस के सही होने के लिए उस व्यक्ति के समर्थन पर आश्रित रहता है, इसलिए वह विवेक खोने के बावजूद चतुराई नही खोता, छोटा बालक जानता है कि वह जोर से रोएगा या जमीन पर पसर जाएगा तो उस की मां बैचेन हो जायेगी और उस को पुचकारेगी। अर्जुन भी अब विषाद में भगवान श्री कृष्ण को प्रभावित करने में लग गए है। वास्तव में विचारो और आचरण के द्वंद में फसा व्यक्ति अपनी छवि कायम रखने के दोहरा चरित्र भी जीने लगता है। इसलिए जो वह कहता है उस से उस का आशय विभिन्न रहता है। गीता में ज्ञान की बाते करने वाला तत्व दर्शी हो आवश्यक नहीं, किंतु वह उच्च ज्ञान की बाते भी सुनने वाले से अपने तत्व दर्शी होने की पहचान के लिए भी करता है। किंतु जो ज्ञानी तत्व दर्शी है, उसे किसे प्रभावित करना है?

पूर्वश्लोक में अर्जुन ने स्वजनों को न मारने में दो हेतु बताये। अब परिणाम की दृष्टि से भी स्वजनों को न मारना सिद्ध करते हैं। जिसे हम ज्ञान में अज्ञान की पुष्टि स्वरूप समझेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.34-35 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.36॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्न का प्रीतिः स्याज्जनार्दन
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः॥

"nihatya dhārtarāṣṭrān naḥ,
kā prītiḥ syāj janārdana..I
pāpam evāśrayed asmān,
hatvaitān ātatāyinaḥ"..II

भावार्थ :

हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें कौन सी प्रसन्नता मिलेगी? बल्कि इन आततायियों को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा॥ ३६॥

Meaning:

What pleasure will we derive by killing these relatives of Dhritraashtra, O Janaardana? We will only incur sin by killing these felons.

Explanation:

As Arjuna built up a case in favour of not fighting the war, he added another point - that this endeavour will incur sin. Under most circumstances killing or taking someone's life is considered a grave sin, which subsequently causes guilt and repentance.

According to Vedic injunctions there are six kinds of aggressors: (1) a poison giver, (2) one who sets fire to the house, (3) one who attacks with deadly weapons, (4) one who plunders riches, (5) one who occupies another's land, and (6) one who kidnaps a wife. Such aggressors are at once to be killed, and no sin is incurred by killing such aggressors. Such killing of aggressors is quite befitting any ordinary man, but Arjuna was not an ordinary person. He was saintly by character, and therefore he wanted to deal with them in saintliness. This kind of saintliness, however, is not for a kshatriya. Although a responsible man in the administration of a state is required to be saintly, he should not be cowardly.

This is a critical point in understanding the message of the Gita. Let us examine what is meant by "sin" here. Since the word "sin" has several interpretations, let us first take something that we can define more precisely, which is the word "crime".

What is a crime? A crime is defined as an act conducted in opposition to a certain law enshrined in a country's legal system. So then, what is a sin? A sin is also defined as an act committed in opposition to a certain law. But what is that law? Who has written that law? Is that law defined by a certain religion? or by certain societal traditions? Which law did Arjuna use to come to the conclusion that his was about to commit a sin?

Capital punishment is the punishment for an ātatāyi. If a kṣatriyā does not do that, he will incur sin. Here Arjuna says (see how much conflict has entered Arjuna's mind), by killing these Atha thaayis, he is using the same word, I will incur pāpam. So how his vision is totally clouded. Look at the sentence.pāpamēva''śrayēdasmān. Only paapah will come to us by killing these people who are ātatāyis. This is the beginning of mōhaḥ. If Shri Krishna agreed that Arjuna's act was a sin, he would have said something. But as we see, Shri Krishna did not say anything even after hearing this statement.

Simple way to understand, if a person recognised in society as Matured, expert, knowledgeable and having high esteem cought by emotion, to safeguard his image, he justified the same from different angles through argument and logic. Arjun minds started the same to justify his emotion before shree krishna by logic of his knowledge, which we learned later on by अज्ञान i.e. lack of knowledge.

All this boils down to a simple point: when faced with a situation in life, how should we act? As the Gita unfolds, we will get to the heart of this question.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन के इतना कुछ कहने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण मूर्तिवत् मौन ही रहते हैं। इसलिये वह पहले की भाषा छोड़कर मृदुभाव से किसी मन्द बुद्धि मित्र को कोई बात समझाने की शैली में भावुक तर्क देने लगता है। भगवान् के निरन्तर मौन धारण किये रहने से अर्जुन की यह परिवर्तित नीति अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होती है।

जिस व्यक्ति की सामाजिक छवि योग्य, अनुभवी, सरल हृदय एवम न्यायप्रिय की हो, वह यदि श्रेष्ठ योद्धा भी हो, उस का अहम उसे भावुकता में कमजोर होना स्वीकार नहीं कर सकता, इसलिए वह किसी भी तरह अपने कार्य को सही भी अपने ज्ञान से सिद्ध कर के अपने शुभेच्छु लोगो को प्रभावित करने लगता है। यह भी एक प्रकार का अज्ञान है। अर्जुन भी अब अपने ज्ञान से भगवान कृष्ण को कुछ भी न बोलने से तर्क से प्रभावित करने लग गया है।

दुर्योधन को आततायी कह कर संबोधित किया गया है। आततायी छः प्रकारके होते हैं--आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें शस्त्र लेकर मारनेको तैयार हुआ, धनको हरनेवाला, जमीन (राज्य) छीननेवाला और स्त्रीका हरण करनेवाला।

इस श्लोक में प्रथम वह कहता है कि दुर्योधनादि को मारने से किसी प्रकार का कल्याण होने वाला नहीं है। इस पर भी काष्ठवत् मौन खड़े श्रीकृष्ण को देखकर उसको इस मौन भाव का कारण समझ में नहीं आता। शीघ्र ही उसे स्मरण हो आता है कि कौरव परिवार आततायी है और धर्मशास्त्र के नियमानुसार आततायी को तत्काल मार डालना चाहिये चाहे वह शिक्षक वृद्ध पुरुष या वेदज्ञ ब्राह्मण ही क्यों न हो। आततायी को मारने में किसी प्रकार का पाप नहीं है। अन्यायपूर्वक किसी पर आक्रमण करने वाला पुरुष आततायी कहलाता है।

अपने शुद्ध दिव्य स्वरूप के विपरीत हम जो गलत काम करते हैं वे पाप कहलाते हैं। शरीर मन और बुद्धि को ही अपना स्वरूप समझकर कोई कर्म करना श्रेष्ठ मनुष्य का लक्षण नहीं है।

अहंकारपूर्वक स्वार्थ के लिये किये गये कर्म हमारे और शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा के बीच वासना की सुदृढ़ दीवार खड़ी कर देते हैं। इन्हें ही पाप कहा जाता है।

शत्रुओं की हत्या करने में अर्जुन का अविवेकपूर्ण विरोध शास्त्र को न समझने का परिणाम है और फिर अपनी समझ के अनुसार कर्म करना अपनी संस्कृति को ही नष्ट करना है। धर्म और धर्म में पाप और पुण्य को गीता में हम आगे पढ़ेंगे।

इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के तर्कों की न स्तुति करते हैं और न ही आलोचना। वे जानते हैं कि अर्जुन को अपने मन की बात कह लेने देनी चाहिए। किसी मानसिक रोगी के लिए यह उत्तम निदान है। इस प्रकार उसका चित्त शांत हो जाता है।

यहां अर्जुन यु टर्न भी लेता दिख रहा है, जब सामान्य तर्क से बात नही बनी एवम यहां तक बोलने पर कि चाहे कौरव उसे मार दे वो युद्ध नही करेगा, कृष्ण द्वारा प्रतिक्रिया न देने पर अब वो पाप एवम धर्म की बाते करने लग गया।

ज्ञान दो प्रकार का कह सकते है, एक जो हम सांसारिक सुखों के ग्रहण करने के प्राप्त करते है। द्वितीय जिस से हम अपने ब्रह्म स्वरूप को जान सके।

अहंकार, कामना एवम आसक्ति के साथ वेद, उपनिषद, पुराण, शास्त्रो का अध्ययन हमे तोते की भांति ज्ञानी बना देता है जिस से हम उन सभी नीति एवम धर्मशास्त्रों की आड़ ले कर अपना स्वार्थ या हित की सिद्धि करते है। हजारो मनुष्य में कुछ ही गिनती के लोग तत्वज्ञान द्वारा अपने को जानने की चेष्टा करते है। बाकी इन्ही धर्मग्रन्थो, गुरु के उपदशों एवम नीतिशास्त्रों के द्वारा अपने ही निर्णय को सिद्ध करने में लगे रहते है। इसे ही शंकराचार्य द्वारा अध्यास भी कहा गया है, जिस का निरूपण होना आवश्यक है। जो स्वयं में प्रकाशवान एवम सत्य है, उसे तर्क से नही सिद्ध किया जा सकता।

शंकराचार्य जी ने कहा है कि व्यष्टिभाव अर्थात भिन्न-भिन्न रूप से , अज्ञान अनेकों प्रकार का होता है । सत्त्व , रज तथा तमोगुणों के अनुसार स्वभाव वाले अज्ञान की वृत्तियाँ भी नाना प्रकार की होती हैं ।।

वेदों में ज्ञान का मूल स्तोत्र है, उपनिषदों एवम वेदान्त ग्रंथो में उस की समीक्षा है। पुराणों में यह सब सामान्य जन की समझ मे आ जाये, इसलिये यह ज्ञान कथाओ के साथ जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार नीतिशास्त्र, धर्म शास्त्र समय एवम परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक व्यवस्था है, जिसे समय समय पर कृर्तव्य -अकृर्तव्य धर्म के अनुसार ही समझा जाना चाहिए।

मनुशास्त्र में ही नही, वरन संसार के सभी धर्मों में अहिंसा परमो धर्म माना गया है, किन्तु आततायी या दुष्ट लोगो को अपने स्वार्थ के लिये हिंसा फैलाते है उसे आज भी कोई भी देश का कानून माफ नही करता एवम उस की फांसी दे दी जाती है। अतः नीति के सामान्य नियम सदा काम करे, आवश्यक नही, परिस्थिति एवम व्यक्ति विशेष को देखते हुए कर्तव्य- धर्म का सूक्ष्म विचार द्वारा ही नीति-नियम के पालन को तय किया जाता है। अर्जुन किमकृतर्व्यविमुढ़ हो रहा था। अतः कृष्ण भगवान को प्रभावित करने के लिये ज्ञान के तर्कों का सहारा लेने लगा।

हताश व्यक्ति जब अपनी बात कह कर दूसरे की सहमति चाहता है तो 100% वो बजाय उस की बात सुनने के प्रथम अपनी ही बात पर ज्यादा जोर देता है और उस वो प्रभावित करता है और एक अच्छे वक्ता होने के नाते कृष्ण भी बिना कुछ कहे उस की बात सुन रहे है तांकि जब बोलने की बारी आये तो पहले वो क्या जानता है और क्या चाहता है और उसे क्या करना चाहिए बता सके। गीता के पाठ में अर्जुन द्वारा की गई हर बात को जवाब दिया गया है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01. 36 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.37॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥

"tasmān nārhā vayaḿ hantuḿ,
dhārtarāṣṭrān sa-bāndhavān..I
sva-janaḿ hi kathaḿ hatvā,
sukhinaḥ syāma mādhava"..II

भावार्थ :

हे माधव! अत: मुझे धृतराष्ट्र के पुत्रों को उनके मित्रों और सम्बन्धियों सहित मारना उचित नही लगता है, क्योंकि अपने ही कुटुम्बियों को मार कर हम कैसे सुखी हो सकते हैं?॥ ३७॥

Meaning:

Therefore, it is not appropriate for us to kill these relatives of Dhritraashtra who our also our brothers. How can we gain pleasure by killing our own, O Maadhava?

Explanation:

The word "tasmaat", which means therefore, indicates the conclusion of an argument. Here, Arjuna concluded his argument to Shri Krishna in which he asserted that that he did not want to fight. To defend that argument, Arjuna provided several points: that there was no point in the war or even in living itself, that the very people that he was fighting against were the same people that made him happy, that killing his kinsmen and his well-wishers was a sin, and that there would be no joy derived in doing so.

This argument was not built on any sort of rationality or logic because Arjuna came under the influence of "moha" or delusion, the delusion that personal relationships were more important in the battlefield than one's duty. An increase in moha usually suppresses our ability to discern between what is correct and what is not. This discerning ability is called "viveka".

Imagine, if law is changed for everyone individually; what law would be left out. Remember, this is the land of Manu Neethi Chozhan. That Manu Neethi Chozhan who was ready to kill his own son because he saw that he has committed a crime, which requires capital punishment. So therefore law is the same for everyone but now Arjuna says it is different. Therefore svabāndhavān. They are my relations. And स्वजन svajanaṁ, again svajanaṁ, by killing my people, how can we enjoy a happy life. Therefore our happiness is more important. Dharma is not important. So we can sacrifice dharma for the sake of happiness. This is indirect conclusion of Arjuna; whereas Gita's teaching is Dharma is prime. That is the conclusion of Gita. Here Arjuna says we can sacrifice Dharma for the sake of a happy life.

Here's an real world example that illustrates moha and viveka. Imagine that your brother has a drinking problem, and needs to hear from you that the addiction needs to stop. What is the right thing for you to do? It is a difficult situation because your moha and viveka come into conflict. Viveka tells you that the right thing for you to do is to intervene, but moha tells you that doing so will endanger your relationship.

Another common example is that a surgeon will usually not perform an operation on a relative exactly because of this moha.

Viveka is the first step in the "Saadhana Chatushthaya", the 4-fold qualifications that are required for anyone treading on the spiritual path. Barring a few exceptions if you do not cultivate the ability to discern what is correct and what is not, your spiritual journey will never commence.

।। हिंदी समीक्षा ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुन के तर्क शास्त्र सम्मत हैं। जाने या अनजाने शास्त्रों का विपरीत अर्थ करने वाले लोगों के कारण दर्शनशास्त्र की अत्यधिक हानि होती है। अर्जुन अपने दिये हुये तर्कों को ही सही समझकर उनसे सन्तुष्ट हुआ इस खतरनाक निर्णय पर पहुँचता है कि उस को इन आक्रमणकारियों को नहीं मारना चाहिये क्योंकि यह हमारे ही बंधु - बांधव है, भगवान् फिर भी शान्त रहते हैं।

श्रीकृष्ण के मौन से वह और भी अधिक विचलित होकर उन से दयनीय भाव से प्रार्थना करते हुए अपने मूर्खतापूर्ण निर्णय की पुष्टि चाहता है। दीर्घकाल तक साथ में रहने से दोनों में स्नेहभाव बढ़ गया था और इसी कारण अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को माधव नाम से सम्बोधित कर के पूछता है कि स्वबान्धवों की ही हत्या कर के कोई व्यक्ति कैसे सुखी रह सकता है। यहाँ ये हमारे घनिष्ठ सम्बन्धी हैं इस ममताजनित मोह के कारण अपने क्षत्रियोचित कर्तव्य की तरफ अर्जुन की दृष्टि ही नहीं जा रही है। कारण कि जहाँ मोह होता है वहाँ मनुष्य का विवेक दब जाता है। विवेक दबने से मोह की प्रबलता हो जाती है। मोह के प्रबल होने से अपने कर्तव्य का स्पष्ट भान नहीं होता।

किसी भी कार्य करने के लिए निर्णय यदि जज्बात पर आधारित हो तो अविवेक पूर्ण होता है, धृष्टराष्ट्र का पुत्र मोह, दुर्योधन का राजगद्दी का मोह, भीष्मपितामह का अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सम्मान का मोह, कर्ण का मित्र मोह सभी सही निर्णय पर हमें नही पहुचने देते। हम अपने स्थिति को न्यायपूर्ण सिद्ध करते करते कभी कभी बिना दूसरे की राय जाने मोह वश एवम कुतर्कों के माध्यम से निर्णय पर भी पहुचा देते है।

गुस्से में अक्सर कोई भी व्यक्ति बोल उठता की मैने जो बोला वो ही सही है और फिर सुनने को तैयार नही होता।

यह भी विचार का विषय है कि जो व्यक्ति स्वयं किमकृर्तव्यविमुढ़ है, स्वयं निर्णय लेने की स्थिति में नही है, सीधे अपनी शंका का समाधान नही सोचते हुए, अपने ही निर्णय पर कैसे पहुचता है। उस का उद्देश्य प्रत्यक्ष व्यक्ति से निर्णय लेना न हो कर, अपने ही निर्णय की पुष्टि लेना होता है। अक्सर हमारे या किसी के पास कोई व्यक्ति असमंजस की स्थिति में पहुचे तो पहले यह जानना जरूरी है कि वह आप की सलाह चाहता है या फिर अपने निर्णय की पुष्टि।

श्रीमद्भगवद् गीता में यह अर्जुन का मोह में कर्तव्य के विरुद्ध जा कर आततायी को दंड नहीं देना, क्योंकि वह हमारा ही बंधु है, इस में सोबराव मोदी की पिक्चर यहूदी का एक दृश्य है जिस में राजा नीति और धर्म पर एक को मृत्युदंड देता है और पिता के अनेक बार क्षमा मांगने और प्रार्थना करने पर भी मृत्युदंड को न्याय की दुहाई दे कर मना कर देता है। किंतु जब उस का पिता राजा को राज खोल कर कहता है कि जिसे तुम मृत्यु दण्ड दे रहे हो, वह और कोई नही, तुम्हारा ही खोया हुआ बेटा है तो राजा को अत्यंत शोक का झटका लगता है और वह तत्काल उस के मृत्यु के आदेश को वापस लेता है, तब उस के पिता कहते है " तुम्हारा खून खून है और हमारा खून पानी"।

अर्जुन क्षत्रिय है, अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लड़ना उस का कर्तव्य है, यदि स्वजन के मोह में वह अपने कर्तव्य को भुला कर युद्ध नही करता है तो दुनिया में श्रेष्ठ लोगो का जो अनुसरण करते है, उन से किस प्रकार से न्याय की उम्मीद करे।

विवेक कैसे करना चाहिए, इस के लिये शंकराचार्य रचित विवेक चूड़ामणि अत्यंत उपयोगी एवम पढ़ने लायक पुस्तक है। अर्जुन अभी भी कृष्ण के मौन रहने पर अपने निर्णय को आगे फिर सही सिद्ध करने की कोशिश करता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.37।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.38-39॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥38।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥39।।

"yady apy ete na paśyanti,
lobhopahata-cetasaḥ..I
kula-kṣaya-kṛtaḿ doṣaḿ,
mitra-drohe ca pātakam"।।38।।

"kathaḿ na jñeyam asmābhiḥ,
pāpād asmān nivartitum..I
kula-kṣaya-kṛtaḿ doṣaḿ,
prapaśyadbhir janārdana"।।39।।

भावार्थ :

यधपि लोभ के कारण इन भ्रमित चित्त वालों को कुल के नाश से उत्पन्न होने वाले दोष दिखाई नही देते हैं, और मित्रों से विरोध करने में कोई पाप दिखाई नही देता है। हे जनार्दन! हम लोग तो कुल के नाश से उत्पन्न दोष को समझने वाले हैं क्यों न हमें इस पाप से बचने के लिये विचार करना चाहिये॥ ३८-३९॥

Meaning:

If their greed-afflicted minds cannot see the error in annihilating society, and the sin of quarreling with their friends; why shouldn't we, who correctly perceive this error, refrain from committing this sin, O Janaardana?

Explanation:

Arjuna now began a second argument in which he began enumerating the flaws of the opposing army. He wanted to point out that his moral judgement was superior relative to the opposing army's position. This current sequence of verses is a classic example of how a seemingly logical argument is completely illogical because it has sprung from erroneous foundations. Moreover, Arjuna echoes the human tendency to point out flaws in others when the flaw lies in the pointer.

Manu smriti said that "One should not squabble with, the Brahmin who performs the fire sacrifice, the family priest, teacher, maternal uncle, guest, dependent children, elders, doctor or relatives."

Arjun was aware that killing one's own relatives was a great sin. He said to Shree Krishna, "Greed has blinded them (Kauravas) and they do not realize that it is a great sin to kill their own relatives and friends, but why should we do the same thing, when we can avoid this transgression?"

Illogical as it may be, Arjuna's comment lets us explore a force similar to moha, that of "lobha" or the desire to accumulate something. An increase in lobha for an object, person, situation or circumstance tends to suppress our viveka, our discerning ability.

Even when we make wrong judgment, emotionally, we will think that the whole world is confused, we are the only the clear sighted person. This is the power of the mind. When the mind is deluded or confused, it is so powerful that it begins to cloud the intellect. Not only it begins to cloud the intellect, the intellect's instead of fighting the mind, emotional mind, the intellect will join the mind.

A politician that has extreme greed for a ministerial position could resort to illegal and unethical means to get it. Recent events in global financial markets are a good example where bankers were willing to defraud investors by selling them subprime loans, simply due to greed.

You know the theory. If you cannot fight a person, join a person. Like a smoker who argues, if we do not smoke the cigarette, how will the company people survive; how many people will lose their jobs. We have to support them by buying. You will find the intellect will justify smoking. Intellect will justify drinking. Intellect will justify all akramams; because the addiction has become too powerful to conquer.

How the rāgaḥ and śokaḥ, attachment and grief, is leading him to conflict or confusion; i.e. mohaḥ. Mohaḥ is dharma-adharma avivekaḥ. Confusion between what is dharma proper and what is adharma. And when there is such a confusion between dharma and adharma; whatever is dharma will appear as though Adharma; and whatever is Adharma will have to appear as Dharma. We know that in the battlefield, Arjuna's duty as a kṣatriyā is fighting the war. Therefore, युद्ध yuddham is dharma for Arjuna but Arjuna sees the very dharma yuddham as adharma. This is conflict No.1.

Secondly, a kṣatriyā should never run away from the battlefield. Running away from the battlefield is shirking the duty, it will come under omission of duty and according to Dharma śāstra, omission of

duty will produce a special sin called pratyavāya. And therefore running away is a pāpa karma, producing pratyavāya but that Arjuna is seeing as though puṇya karma.

Therefore, Dharma yuddham he is seeing as Adharma and therefore he is trying to do adharma palāyanam; palāyanam means running away; he sees as though dharma. Thus the confusion is complete. And the problem is once the mind which is so much attached and confused begins to overpower a person, that it stifles the intellect also. Even an educated informed intellect is stifled by an emotional mind, a disturbed mind. And unfortunate thing is when the mind is so much overpowered by the emotion, the intellect cannot fight the problem, and when the intellect cannot fight, it begins to support the mental weakness; because the rule is if you cannot fight the enemy, then the join the enemy. The rule of election. If you cannot fight the enemy, join the enemy unscrupulously.

Both moha and lobha have one thing in common, they seemingly result in pleasure. For example, in case of moha, extreme attachment one's son or one's spouse gives one pleasure. In case of lobha, the desire to accumulate wealth or power gives one pleasure. But in both cases, the pleasure that one obtains is temporary and fleeting. In addition, one tends to cling to the object gained by lobha or moha for fear of losing it.

So what attitude should we have towards people or things we care about? The Gita delves into this topic in great detail

।। हिंदी समीक्षा ।।

निसंदेह सत्ता और धन के लालच से अन्धे हुए कौरव यह देखने में असमर्थ थे कि इस युद्ध के कारण सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे का कितना विनाश होने वाला है। उन की महत्त्वाकांक्षा ने उन के विवेक और भावना को इस प्रकार आच्छादित कर दिया था कि युद्ध में अपने ही बान्धवों की हत्याओं की क्रूरता को भी वे नहीं समझ पा रहे थे।

अर्जुन के कथन से लगता है कि उसने अपना विवेक खोया नहीं था और इस भ्रातृहन्ता युद्ध के द्वारा होने वाले भावी सामाजिक विनाश को वह स्पष्ट देख रहा था। उसका प्रस्तुत तर्क कुछ इस प्रकार का है। यदि हमारा कोई मित्र मद्यपान के कारण स्वयं को भूलकर अभद्र व्यवहार करता है तो उस समय उसका प्रतिकार करना और भी अधिक विचित्र बात होगी। हमको समझना चाहिये कि उस मित्र ने अपना विवेक खो दिया है और वह स्वयं ही नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। ऐसे समय हमारे लिये उचित है कि उसकी अशिष्टता पर ध्यान न देकर उसे क्षमा कर दें।इसी प्रकार अर्जुन का तर्क है कि यदि दुर्योधन और उसके मित्र अन्धे होकर अन्यायपूर्ण आक्रमण करते हैं तो क्या पाण्डवों को शान्ति की वेदी पर स्वयं का बलिदान करते हुये युद्ध से विरत हो जाना उचित नहीं है यह धारणा स्वयं में कितनी खतरनाक है इस को हम तब समझेंगे जब गीता के आगामी परिच्छेदों में तत्त्वज्ञान के महत्त्वपूर्ण अंश को देखेंगे जो भारतीय जीवन का सारतत्त्व है। अधर्म का सक्रिय प्रतिकार ही एक मुख्य सिद्धांत है जिसका भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में प्रतिपादन किया है।

अर्जुन ने पलायन का तर्क के साथ शास्त्रोक्त तरीका भी खोज लिया। गीता में यह श्लोक अत्यंत महत्वपूर्ण है कि मोह, अहम और भय में हम अपने विवेक का कैसे उपयोग करते है। अपने कर्तव्य को नही देखते हुए, शास्त्रों एवम तर्क से धर्म और अधर्म को परिभाषित करते है। अधर्म की धर्म और धर्म को अधर्म सिद्ध भी करने की चेष्टा करते है। अर्जुन की मानसिक स्थिति मोह, ममता और भय में है, इसलिए वह दूसरे के कार्य की समीक्षा अब अपने को संसार में अधिक दायित्वपूर्ण बताने के विवेक का सहारा लेता है। मन और बुद्धि जब भावना में बह जाती है तो विवेक को भी घेर लेती है, इसलिए विवेक भी भावनाओ में निर्णय लेने लग जाता है। क्या शराब पीने, रिश्वत लेने, मांस खानेवालो के पास अपनी बात को धर्मयूक्त सिद्ध करने के लिए, तर्क नही होता है? वे लोग अपने कार्य को सही मानते है, चाहे मजबूरी हो या अन्य कोई भी कारण। जब मोह में पड़ कर कोई व्यक्ति किसी कार्य को करना नही चाहता तो वह अपनी बात को भी सही सिद्ध करने के तर्क भी ढूंढ लेता है, यही मस्तिष्क की खूबसूरती भी है और प्रकृति का दृढ़ बंधन भी।

यह तर्क वास्तविक जीवन के बहुत अधिक निकट है जब हम अपने कर्तव्य के लिए धर्म की लड़ाई लड़ रहे है उस समय इस भाव का होना उचित नही। आज के संदर्भ में पाकिस्तान की निंदनीय पुलवामा की घटना के बाद यदि हम अभी भी भाईचारे की बात करते है तो उसे कभी भी सबक नही सीखा सकते उस के साथ दृढ़ता के साथ पेश आना और उसे अपनी मजबूती को दिखाना जरूरी है। अर्जुन का तर्क युद्ध संगत स्थिति में कभी भी उचित नही।

यह ज्वलंत प्रश्न ही है कि यदि आप के विरुद्ध कोई व्यक्ति लोभ, अहंकार, क्रोध या मोह - ममता में कोई अवांछित कार्य करता है और समझाने पर भी नही माने तो हमारा निर्णय उस के साथ मोह - ममता, त्याग, क्षमा और अहम के साथ हो या निस्वार्थ भाव में स्थितप्रज्ञ की भांति हो। मन और बुद्धि पर इस के कैसे नियंत्रण हो, जिस से हम अपने निर्णय को समझ सके।

अर्जुन के तर्क उस के मोह, अहम, भय और शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है किंतु स्वाभाविक तौर पर शास्त्र के सही ज्ञान के अभाव में ज्ञान भी भावनाओ में अज्ञान ही होता है। गीता को पढ़ने वालों और गीता को नही पढ़ने वालो दोनो वर्ग में अपनी बात को सत्य सिद्ध करने में ज्ञान का अभाव नहीं होता। इसे हम बहाना भी कहते है जो ज्ञान और तर्क पर आधारित है, यह स्थिति किसी भी दिशा में अधिक खराब कही जाती है क्योंकि इस में तर्क रखने वाला व्यक्ति को अपने तर्क का भी अहंकार हो जाता है, जिस के कारण वह किसी और की सलाह या विचार को स्वीकार भी नही करता।

आक्रमणकारी उन्मादी होता है, उस का उन्मांद विनाश की ओर होता है, जिस में विवेक, शांति, ज्ञान या धर्म जैसी कोई वस्तु नही होती। इस उन्माद का विरोध एक विवेकशील व्यक्ति अहिंसा से एक सीमा तक ही कर सकता है, जब तक उस की क्षमता उसे रोक पाने में समर्थ हो। किन्तु यदि उन्मादी युद्ध के विनाश के आकलन के बाहर अपनी कामनाओ और लोभ एवम मोह में दुर्योधन या धृष्टराष्ट्र बन जाये तो अर्जुन की सोच सही है या गलत, इसे भगवान श्री कृष्ण सुंदर तरीके से बताते है, जो हम आगे पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।। 01.38-39 ।।

टिप्पणी: हिंदी और इंग्लिश में explanation होने से गीता कभी कभी व्हाट्सएप पर लंबी लिखी दिखती है किंतु you tube या वीडियो रिकॉर्डिंग में यह मुश्किल से 5 मिनट का विषय है।

अर्जुन की मानसिक स्थिति युद्ध के प्रारंभ में जो थी वह अहंकार से अवसाद में मोह, ममता और भय से परिवर्तित हुई, यही स्थिति अपने पारिवारिक स्नेह में कर्तव्य से च्युक्त करने और धर्म और न्याय के क्षेत्र में अपने और पराए में भेद उत्पन्न करने को पर्याप्त है। किंतु इस से भी भगवान श्री कृष्ण की सहमति न बनते देख, तर्क द्वारा अपनी बात को सिद्ध करने का अर्जुन का प्रयास शुरू हो गया जो इस अध्याय के अंतिम श्लोक तक चलेगा।

यह स्थिति विचार करे तो किसी कार्य को करने या न करने की परिस्थिति में हम लोग भी आत्मसंतुष्टि के कोई न कोई तर्क का सहारा लेते है। अपनी कमजोरी को उस में लपेट कर अपने को सही साबित करने की कोशिश करते है। किंतु ज्ञान के गहन अध्ययन के अभाव में हमारा ज्ञान अहंकार युक्त होता है इसलिए हम किसी की सुनते भी नही है।

अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के कभी कभी प्रेरक प्रसंग भी हमारे पूर्व ग्रंथ के उदाहरण या कहानी से आपस में कहे सुने जाते है, किंतु विचार करे जिन भावनाओ से हम अपने को ऊंचा या अच्छा बताने को चेष्टा करते है, जिन फोटो, प्रसंग या घटना क्रम को हम बताते है उस पर हम विश्वास रखते हुए यह कह सकते है कि यह हमारा चरित्र है।

अर्जुन भी युद्ध भूमि में जिस सामाजिक व्यवस्था को बताएगा, यह उस का पढ़ा पढ़ाया ज्ञान है। उस का गहन अध्ययन नही है, सिर्फ अपने को सत्य सिद्ध कर के भगवान कृष्ण का समर्थन लेने के लिए है। इसे हम आगे समझेंगे।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.40॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥

"kula-kṣaye praṇaśyanti,
kula-dharmāḥ sanātanāḥ..I
dharme naṣṭe kulaḿ kṛtsnam,
adharmo 'bhibhavaty uta"..II

भावार्थ :

कुल के नाश से सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म का नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल में अधर्म फैल जाता है॥ ४०॥

Meaning:

As society gets destroyed, its timeless laws and traditions erode. Once that happens, lawlessness begins to dominate the entire society.

Explanation:

We are nearing the end of the first chapter, and have just begun examining the last set of verses.

Here, Arjuna's deluded mind began to spin out of control, and the scale of his delusion became progressively magnified. He began enumerating how the act of warfare between the two warring factions will ultimately result in the destruction of civilization.

Here Arjuna wants to say that, without family life, Dharma can never grow. Religion can never grow. Culture can never grow and spirituality is never possible. Therefore, whether it is dharma; whether it is culture; whether it is religion; or whether it is spirituality; all these things can grow only in a society where there are stable surviving long lasting families. If an industry should grow very well, you know that it requires an ideal infrastructure where different departments are functioning in harmony, when there is understanding, where people are working as a team, only when such a wonderful infrastructure is there; material growth of an industry is possible. Similarly, if a nation should progress and grow, we know now, especially we have a learned hard lesson how a stable government is important for the growth of the country. If there is no stable government; where the different members, there is no cohesiveness and harmony; most of the time, the government is struggling only for their survival, nobody has the time to think of the progress of the nation. So, just as a good infrastructure is required for an industrial growth; a good stable government is required for national growth; a stable family is required for cultural growth. Dharmic growth. Religious growth. He warned that in absence of civilisation, the life turned into materialism without any norms and ethics.

Infighting has caused the downfall of empires and civilizations, the most notable example being the Roman empire. When the upholders of the law, namely the statesmen and the warriors, fight among themselves, a breakdown of law and order takes place.

But here, Arjuna looked only at the worst case scenario, totally ignoring the possibility that the war could result in restoration of peace, order and prosperity to the kingdom. His mind had begun a downward slide of negativity that only became worse as he spoke more.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जिस प्रकार कोई कथावाचक हर बार पुरानी कथा सुनाते हुए कुछ नई बातें उसमें जोड़ता जाता है इसी प्रकार अर्जुन की सर्जक बुद्धि अपनी गलत धारणा को पुष्ट करने के लिए नएनए तर्क निकाल रही है। वह जैसे ही एक तर्क समाप्त करता है वैसे ही उस को एक और नया तर्क सूझता है जिस की आड़ में वह अपनी दुर्बलता को छिपाना चाहता है। अब उस का तर्क यह है कि युद्ध में अनेक परिवारों के नष्ट हो जाने पर सब प्रकार की सामाजिक एवं धार्मिक परम्परायें समाप्त हो जायेंगी और शीघ्र ही सब ओर अधर्म फैल जायेगा।

सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में नएनए प्रयोग करने में हमारे पूर्वजों की सदैव विशेष रुचि रही है। वे जानते थे कि राष्ट्र की संस्कृति की इकाई कुल की संस्कृति होती है। इसलिये यहाँ अर्जुन विशेष रूप से कुल धर्म के नाश का उल्लेख करता है क्योंकि उसके नाश के गम्भीर परिणाम हो सकते हैं।

किन्तु यहां अर्जुन की आशंका निर्मूल नही है, युद्ध कभी भी लाभकारी नही होता। किन्तु जब आतातायी किसी भी भाषा मे समझने में तैयार न हो तो युद्ध अपनी सभ्यता एवम संस्कृति की रक्षा के लिये अनिवार्य हो जाता है। किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक एवम औद्योगिक विकास के लिए स्थिर सरकार, शिक्षित एवम सभ्य प्रजा एवम विकास के लिए अवसर होना चाहिए। युद्ध कोई नही चाहता किंतु युद्ध किसी न किसी की अत्यधिक महत्वांक्षा के कारण होता ही है। इसलिए क्षत्रिय को युद्ध भूमि में इस दृष्टिकोण से बात करना युद्ध से पलायन भय और कायरता पूर्ण ही कहा जाता है।

जब युद्ध होता है तब उसमें कुल-(वंश-) का क्षय (ह्रास) होता है। जब से कुल आरम्भ हुआ है, तभी से कुल के धर्म अर्थात् कुल की पवित्र परम्पराएँ, पवित्र रीतियाँ, मर्यादाएँ भी परम्परा से चलती आयी हैं। परन्तु जब कुल का क्षय हो जाता है, तब सदा से कुल के साथ रहनेवाले धर्म भी नष्ट हो जाते हैं अर्थात् जन्म के समय द्वजाति संस्कार के समय, विवाह के समय, मृत्यु के समय और मृत्यु के बाद किये जानेवाले जो-जो शास्त्रीय पवित्र रीति-रिवाज हैं, जो कि जीवित और मृतात्मा मनुष्यों के लिये इस लोक में और परलोक में कल्याण करनेवाले हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। कारण कि जब कुल का ही नाश हो जाता है तब कुल के आश्रित रहनेवाले धर्म किस के आश्रित रहेंगे।

जब कुल की पवित्र मर्यादाएँ, पवित्र आचरण नष्ट हो जाते हैं, तब धर्म का पालन न करना और धर्म से विपरीत काम करना अर्थात् करने लायक काम को न करना और न करनेलायक काम को करना रूप अधर्म सम्पूर्ण कुल को दबा लेता है अर्थात् सम्पूर्ण कुल में अधर्म छा जाता है।अब यहाँ यह शङ्का होती है कि जब कुल नष्ट हो जायगा, कुल रहेगा ही नहीं, तब अधर्म किस को दबायेगा, इस का उत्तर यह है कि जो लड़ाई के योग्य पुरुष हैं, वे तो युद्ध में मारे जाते हैं; किन्तु जो लड़ाई के योग्य नहीं हैं, ऐसे जो बालक और स्त्रियाँ पीछे बच जाती हैं, उन को अधर्म दबा लेता है। कारण कि जब युद्ध में शस्त्र, शास्त्र, व्यवहार आदि के जानकार और अनुभवी पुरुष मर जाते हैं, तब पीछे बचे लोगों को अच्छी शिक्षा देनेवाले, उन पर शासन करनेवाले नहीं रहते। इस से मर्यादा का, व्यवहार का ज्ञान न होने से वे मनमाना आचरण करने लग जाते हैं अर्थात् वे करने लायक काम को तो करते नहीं और न करने लायक काम को करने लग जाते हैं। इसलिये उन में अधर्म फैल जाता है।

हिन्दू धर्म मे विसंगतियों का उत्पन्न होना सैंकड़ो वर्षो की युद्ध के उपरांत की दासता का होना है। युद्ध रजो एवम तमो गुण की प्रधानता के कारण लोभ, मोह एवम अहंकार में दुर्योधन जैसे लोगो की महत्वाकांक्षा के कारण होता है। युद्ध मे जब परिस्थितियां खड़ी कर देती है, तो अर्जुन के समान नैतिकता का बाते करना सिर्फ मोह एवम कायरता ही कहलाती है। इन परिस्थितियों में युद्ध के उपरांत शांति, दुष्ट प्रवृतियों का दमन एवम राष्ट्र का विकास ही होता है।

अर्जुन का युद्ध मे आगमन दुर्योधन के विपरीत एक योद्धा के रूप में हुआ फिर सेना के निरीक्षण के समय कृष्ण का कुरु वंशियो को देख लो कहना और इतने वीरो और युद्ध मे आतुर लोगो को देख उस को भय लगा एवम करुणा भी उपजी। जिस से उस का शरीर कंपकम्पाय फिर उस ने बोलना शुरू किया। बोलने के क्रम में पहले मोह था, फिर लोभ और अब ज्ञान शुरू हो गया। किसी भी वीर योद्धा को अपना कर्तव्य छोड़ कर यह क्यों नही करना चाहिये आगे गीता में हमे कृष्ण द्वारा पता चलेगा। किन्तु दैनिक जीवन मे जो हमे करना चाहिए उस को हम इसी प्रकार मोह, लोभ या ज्ञान को तर्क सम्मत बना कर नही करते।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.40।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.41॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

"adharmābhibhavāt kṛṣṇa,
praduṣyanti kula-striyaḥ..I
strīṣu duṣṭāsu vārṣṇeya,
jāyate varṇa-saṅkaraḥ"..II

भावार्थ :

हे कृष्ण! अधर्म अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं, स्त्रियों के दूषित हो जाने पर अवांछित सन्ताने उत्पन्न होती है॥ ४१॥

Meaning:

When lawlessness dominates, it deteriorates the condition of women in society, O Krishna. Deterioration of women, O Vaarshneya, gives rise to contamination of character.

Explanation:

Arjuna's rambling apocalyptic post-war imagination continues. He echoes a fear that most warriors have in the back of the mind when they go to war. Invading armies seldom show respect and dignity to the women of the defeated kingdom, they are usually treated as the spoils of the war. History has proven this out, and unfortunately it is still the case wherever there is the aftermath of war.

In any society, due to the law of averages, there always will be a part of the population with questionable morals and character. However, in a post-war situation where women are treated without dignity, and have to succumb to their invaders, there is no guarantee that they will be able to raise their children with the right values, education and morals. This results in a breakdown in character in the younger generation across the board. Arjuna downward-spiraling mind feared this scenario.

Footnotes

1. The Sanskrit word "varna" has several meanings. One traditional meaning of the word "varna" is caste, and if this meaning is taken, the second verse means "this gives rise to contamination of castes". However, since we cannot even begin to imagine what the caste system looked like in the age when the Gita was written, I have used a more abstract meaning of the word "varna".

2. Good population in human society is the basic principle for peace, prosperity and spiritual progress in life. The varnasrama religion's principles were so designed that the good population would prevail in society for the general spiritual progress of state and community. Such population depends on the chastity and faithfulness of its womanhood. As children are very prone to be misled, women are similarly very prone to degradation. Therefore, both children and women require

protection by the elder members of the family. By being engaged in various religious practices, women will not be misled into adultery. According to Canakya Pandita, women are generally not very intelligent and therefore not trustworthy. So the different family traditions of religious activities should always engage them, and thus their chastity and devotion will give birth to a good population eligible for participating in the varnasrama system. On the failure of such varnasrama-dharma, naturally the women become free to act and mix with men, and thus adultery is indulged in at the risk of unwanted population. Irresponsible men also provoke adultery in society, and thus unwanted children flood the human race at the risk of war and pestilence.

3. The fact cannot ignored that in well cultured society, women occupied a very high status in Vedic society. For families to be religious, and societies to be moral, it is necessary that their women be virtuous. According to the Manu Smṛiti: yatra nāryas tu pūjyante ramante tatra devatāḥ (3.56) “Societies where women are worshiped, for they are chaste and virtuous, the celestial gods are joyous.”

Arjun became concerned and started comprehending, “What would happen to the society in the absence of guidance and protection of elders? The women of the family may get misled.” Therefore, Arjun said to Shree Krishna that if the women of the family turn towards immorality, and commit adultery, they would bear illegitimate children. This would not only destroy peace and happiness of the future generations but also deprive the ancestors of their Vedic rites. Family traditions will be abandoned and the welfare of society will be at stake.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन युद्ध भूमि में अपने क्षत्रिय धर्म के कर्तव्य को समझे बिना मोह एवम भय से अपने पूर्वकथित तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि अधर्म के बढ़ने पर समाज में धीर धीरे नैतिकता का पतन हो जायेगा और वर्ण संकर जातियाँ उत्पन्न होंगी।

किसी भी विकसित समाज में सभ्यता और संस्कृति का विकास उस समाज में विकसित नियमो के कारण होता है। मनुष्य और पशु का विभेद उस के बुद्धि और विवेक से है। इसलिए समाज में परिवार बच्चो को सरंक्षण, उन के संस्कार, शिक्षा और उन के जीवन व्यापन का आधार होता है। विज्ञान भी मानता है की भ्रूण से माता के अचार विचार का प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। सामाजिक व्यवस्था कर्म के आधार पर ब्रह्म ज्ञान देने के लिए ब्राह्मण, रक्षा और शासन के लिए क्षत्रिय, व्यापार के लिए वैश्य और सेवा के लिए शुद्र की थी। इसे भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास में बांटा गया। गृहस्थ ही पूरे समाज का लालन पालन कर सकता है। जिस का दायित्व परिवार के मुखिया पर होता है। युद्ध में परिवार का मुखिया यदि नही रहे तो परिवार सुरक्षित नही रहता। बच्चो में संस्कार नहीं होते, स्त्रियां आततायी द्वारा भ्रष्ट कर दी जाती है। फिर जो संताने होती है वह तामसी वृति की खाओ पियो और मौज करो की होती है। अर्थात मनुष्य हो कर भी समाज बुद्धि और विवेक से भौतिकवाद पर, हिंसा, व्यभिचार और अनैतिकता पर टिक जाता है।

वर्ण एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ विकृत हो जाने से वह आज के शिक्षित लोगों की तीखी आलोचना का विषय बन गया है। उन की आलोचना उचित है यदि उस का विकृत अर्थ स्वीकृत हो। परन्तु आज वर्ण के नाम पर देश में जो कुछ होते हुये हम देख रहे हैं वह हिन्दू जीवन पद्धति का पतित रूप है। प्राचीन काल में वर्ण विभाग का आधार समाज के व्यक्तियों की मानसिक व बौद्धिक क्षमता और पक्कता होती थी।

वास्तव में वर्ण व्यवस्था समाज में विवेक, कर्म एवम आचरण पर आधारित व्यवस्था थी, जिसे शनैः शनैः जन्म पर आधारित माना गया। यही सामाजिक व्यवस्था का पतन है। मनुस्मृति से गीता तक मे वर्ण व्यवस्था में कही भी इसे जन्म पर आधारित नही कहा गया है। गीता में इस व्यवस्था को हम आगे पढ़ेंगे।

बुद्धिमान तथा अध्ययन अध्यापन एवं अनुसंधान में रुचि रखने वाले लोग ब्राह्मण कहलाते थे क्षत्रिय वे थे जिनमें राजनीति द्वारा राष्ट्र का नेतृत्व करने की सार्मथ्य थी और जो अपने ऊपर इस कार्य का उत्तरदायित्व लेते थे कि राष्ट्र को आन्तरिक और बाह्य

आक्रमणों से बचाकर राष्ट्र में शांति और समृद्धि लायें। कृषि और वाणिज्य के द्वारा समाज सेवा करने वालों को वैश्य कहते थे। वे लोग जो उपयुक्त कर्मों में से कोई भी कर्म नहीं कर सकते थे शूद्र कहे जाते थे। उनका कर्तव्य सेवा और श्रम करना था। हमारे आज के समाजसेवक और अधिकारी वर्ग कृषक और औद्योगिक कार्यकर्त्ता आदि सभी उपर्युक्त वर्ण व्यवस्था में आ जाते हैं।

अर्जुन द्वारा वर्णसंकर का तात्पर्य यही है कि वर्ण के अनुसार मनुष्य के कर्म उसे शिक्षा, परिवार से संस्कार और माता - पिता के जीन से मिलता है किंतु इस के अभाव में कोई भी वर्ण अपने वर्ण के अनुसार गौरव पूर्ण जीवन को प्रर्याप्त नही होता और न अपने वर्ण के अनुसार कर्म कर पाता है।

वर्णव्यवस्था को जब हम उसके व्यापक अर्थ में समझते हैं तब हमें आज भी वह अनेक संगठनों के रूप में दिखाई देती है। अत वर्णसंकर के विरोध का अर्थ इतना ही है कि एक विद्युत अभियन्ता शल्यकक्ष में चिकित्सक का काम करता हुआ समाज को खतरा सिद्ध होगा तो किसी चिकित्सक को जल विद्युत योजना का प्रशासनिक एवं योजना अधिकारी नियुक्त करने पर समाज की हानि होगी। समाज में नैतिक पतन होने पर अनियन्त्रित वासनाओं में डूबे युवक और युवतियाँ स्वच्छन्दता से परस्पर मिलते हैं। कामना के वश में वे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का किंचित भी विचार नहीं करते। इसलिये अर्जुन को भय है कि वर्णसंकर के कारण समाज और संस्कृति का पतन होगा।

अर्जुन की शंका के अनुसार प्रमाण स्वरूप आज भी हिंदू समाज में वर्ण संकर जाति में अनेक लोग मुगल और अंग्रेजो के शासन से परिणाम स्वरूप है, जिन्हे अपनी संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान नहीं है और लोभ, स्वार्थ और भोग - विलास के कारण वे अपना और अपने धर्म, जाति और संस्कृति को भूल गए है। इस का ज्वलंत उदाहरण बिहार के एक नेता है जो यह कहते कि राम चरित मानस नफरत फैलाने वाला ग्रंथ है। अपनी धर्म संस्कृति पर गर्व नही करते हुए ये लोग उस की भर्त्सना कर के गर्व महसूस करते है। अज्ञान की सीमा यह है कुछ लोग इस पर वाद - विवाद भी करते हुए अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन भी करते है। इस देश ने जितने भी युद्ध बाहर वालो के झेले है उस मे किसी भी युद्ध मे जितने वाले आततायी लोगो ने देश की स्त्रियों की मर्यादा एवम शालीनता को नष्ट किया, जिस का परिणाम स्वरूप देश इन कुरीतियो का शिकार होकर वर्णसंकर संतीति को पुनः सुसंस्कृत कर अपनी संस्कृति को प्राप्त करने की चेष्ठा कर रहा है। आज का हिन्दू समाज का पतन, पाश्चात्य संस्कृति का मोह एवम सनातन धर्म के अध्ययन के प्रति उदासीनता वर्षो से झेले युद्ध एवम दासता का ही परिणाम है।

गीता में प्रथम अध्याय में उन सभी प्रश्नों को उठाया गया जिसे मनुष्य की समझना आवश्यक है। जब तक मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता एवम औचित्य को नही समझेंगे, तब तक उस के प्रति चिंतन एवम ज्ञान नही होगा, एवम सामाजिक व्यवस्था को ही श्रेष्ठ मानते हुए, जीव अपने सुख-दुख, जन्म-मरण को ही सार्थकता के साथ व्यतीत करते हुए, सृष्टि के काल चक्र में ही फसा रहेगा।

अर्जुन युद्ध के दुष्परिणाम बताते हुए आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत ।। 01.41 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.42-43॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ 42।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ 43।।

"saṅkaro narakāyaiva,
kula-ghnānāḿ kulasya ca..I
patanti pitaro hy eṣāḿ,
lupta-piṇḍodaka-kriyāḥ"।।42।।

"doṣair etaiḥ kula-ghnānāḿ,
varṇa-saṅkara-kārakaiḥ..I
utsādyante jāti-dharmāḥ,
kula-dharmāś ca śāśvatāḥ"।।43।।

भावार्थ :

अवांछित सन्तानों की वृद्धि से निश्चय ही कुल में नारकीय जीवन उत्पन्न होता है, ऐसे पतित कुलों के पितृ गिर जाते है क्योंकि पिण्ड और जल के दान की क्रियाऐं समाप्त हो जाती है। इन अवांछित सन्तानो के दुष्कर्मों से सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं॥ ४२-४३॥

Meaning:

Contamination of character pushes the annihilators of society and society itself into hell; their ancestors fall from grace, having been deprived of their offerings of Pinda and water. Timeless societal and humanitarian values and traditions are destroyed by the contamination of character created by these annihilators of society.

Explanation:

Arjun explains his worries on rituals. There will be confusion and therefore He says, the ritual part of religion will have to be given up and why should there be rituals, you might ask? As I said, rituals are the method of communicating our feelings. Even the most nāsthika country will have the rituals when some dignitary comes, they also will shake hands. Shaking hand is what? It is a ritual. it is a clean ritual. So therefore, nobody can avoid rituals. Internationally rituals are there. If you have doubt, watch the Olympic games. Flag hosting; We used to do in front of our temples. Now they are doing it in the Olympic ground. And that all done, very ritualistic. Walking also special. Thereafter they also take oath; which is ritual. And again when they bring down the flag, it is a ritual and it is handed over to the other person, mayor of the city who is going to host the next Olympic. That is a ritual. People who say rituals are ridiculous, they do not know what it is all about.

In Indian culture, one's ancestors and family lineage are given great importance. In these verses, Arjuna expressed his worry that the deterioration of post-war society would result in loss of respect for the ancestors who created the laws and values of that society. "Pinda" is a ball of rice offered to the memory of one's ancestors during certain Indian rituals.Vēda considered that the blessing of our forefathers is very much required for our growth, whether it is material growth or spiritual growth. That is why any ritual in the family is started only with a particular śrāddham called, nāndi śrāddham.

It is not that difficult to draw a parallel between the reverence for the ancestors of a society expressed here, and the reverence for the builders of any institution in the modern world. During every independence day celebration of a country, freedom fighters' contributions are remembered

and revered. Similarly, if you walk the hallways of any modern corporation, you will usually see the founders' portraits displayed prominently. Someone who cares deeply about one's country, or about one's place of work, will never look forward to the denigration of the founders. Arjuna, even in his deluded state, cared about the builders of the Kuru dynasty.

Once the rituals are gone, the next generation child will ask a question, why should I marry a person from this community because there is no relevance. I can marry any person; should belong to the opposite sex or even to same sex. That is the minimum qualification. That is the only thing. And I am not saying which is right or wrong. I am just again objectively presenting the natural consequences. Why I am saying so is the Government will prosecute me; if I am going to say that inter-caste marriage is wrong. So therefore I am not going to say inter-caste marriage is right or wrong. What I will say is that it will be natural consequence when religion is removed from rituals or rituals are removed from religion. And therefore he says, Jāti dharmaha, kulah dharmāḥ and what type of dharmahs they are? śaśvathah, it has stated from Anādi kāla pravruthaḥ. So perpetuation requires a lot of effort, but destruction takes only one generation and one link is gone, the whole chain will be gone. And therefore, śaśvathah kula dharmāḥ ca utsādyante. they are destroyed.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अब अर्जुन अपनी व्यथा युद्ध के परिणाम स्वरूप वर्णसंकर के दुष्परिणामों को बताता है, जिसे नकारा नही जा सकता। जातियों के वर्णसंकर होने से अन्तर्बाह्य जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है और फलत परिवारिक व धार्मिक परम्परायें नष्ट हो जाती हैं।

हिन्दू धर्म के अनुसार मृत पितरों को पिण्ड और जल अर्पित किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि पितर यह देखना चाहते हैं कि उन के द्वारा अत्यन्त परिश्रम से विकसित की गई और अपने पुत्रों आदि को सौपी गई सांस्कृतिक शुद्धता को वे किस सीमा तक बनाये रखते हैं और उसकी सुरक्षा किस प्रकार करते हैं। हमारे पूर्वजों द्वारा अथक परिश्रम से निर्मित उच्च संस्कृति को यदि हम नष्ट कर देते हैं तो वास्तव में हम उनका घोर अपमान करते हैं। यह कितनी आकर्षक और काव्यात्मक कल्पना है कि पितरगण अपने स्वर्ग के वातायन से देखते हैं कि उनके पुत्रादि अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुये किस प्रकार का जीवन जीते हैं यदि वे यह देखेंगे क उनके द्वारा अत्यन्त श्रम से लगाये हुये उद्यानों को उनके स्वजनों ने उजाड़कर जंगल बना दिया है तो निश्चय ही उन्हें भूखप्यास के कष्ट के समान पीड़ा होगी। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह श्लोक अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रत्येक पीढ़ी अपनी संस्कृति की आलोकित ज्योति भावी पीढ़ी के हाथों में सौंप देती है। नई पीढ़ी का यह कर्तव्य है कि वह इसे सावधानीपूर्वक आलोकित अवस्था में ही अपने आगे आने वाली पीढ़ी को भी सौंपे। संस्कृति की रक्षा एवं विकास करना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

ऋषि मुनियों द्वारा निर्मित भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है जिसकी सुरक्षा धार्मिक विधियों पर आश्रित होती है। इसलिये हिन्दुओं के लिए संस्कृति और धर्म एक ही वस्तु है। हमारे प्राचीन साहित्य में संस्कृति शब्द का स्वतन्त्र उल्लेख कम ही मिलता है। उसमें अधिकतर धार्मिक विधियों के अनुष्ठान पर ही बल दिया गया है।

धीरता, क्षमा, मन को वश में रखना, अन्याय से दूसरों का धन न लेना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, आत्मज्ञान, सच बोलना और क्रोध न करना यह दस के लक्षण सनातन धर्म मे नारद परि. उ ३/२४ में कहे गए है। छोटे बच्चों एवम स्त्रियों में यह संस्कार स्वरूप आने से वश की परंपरा एवम संस्कृति कायम रहती है और चलती रहती है।

जब घर के बुजुर्ग या बड़े लोग सनातन धर्म को भूल कर तामसी एवम राजसी प्रवृति में प्रवृत्त हो जाते है, तो उस घर या वंश में अधर्म आ जाता है एवम कुल वर्णसंकर हो जाता है। कुल की स्त्रियां यदि अमर्यादित हो जाये तो कहते है कि पति के रहते अन्य से जो संतान होगी वह कुंड एवम पति के मरने के बाद जो अन्य से संतान होगी वह गोलक होगी, जहां धर्म का पालन करवाने वाला नही होगा।

विचारणीय बात यही है कि देश मे सभ्यता एवम संस्कृति में अधर्म ने अपने पावँ पसारने शुरू कर दिए है जिस से भारतवर्ष में सनातन धर्म की गरिमा कमजोर हो रही है। अनेक जाति एवम समाज जिस में ब्राह्मण, अग्रवाल, क्षत्रिय आदि है, वह कुल की मर्यादा के विरुद्ध अधर्म की नीति पर चलने लगे गए है।

आज अंतर्जातीय विवाह को बढ़ावा दिया जा रहा है, शादी के लड़का या लड़की ही होना भी अनिवार्य नहीं हो रहा, एक ही लिंग में शादी को भी मान्यता दी जा रही है। विवेक का अर्थ मोक्ष को प्राप्त करना होता है जिस से मनुष्य जन्म सार्थक हो, किंतु अब विवेक का अर्थ किसी भी नैतिक और अनैतिक तरीके से धन कमाना और स्वच्छंद व्यवहार करना हो गया है। चलचित्र में नग्न व्यवहार करने वाले आज के नवयुवकों के आदर्श हो रहे है, इन के समक्ष प्राचीन परंपरा और रीतियों की बात करना भर भी दकियानुसी है।

वास्तव में हिन्दू धर्म सामाजिक जीवन में आध्यात्मिक संस्कृति संरक्षण की एक विशेष विधि है। धर्म का अर्थ है उन दिव्य गुणों को अपने जीवन में अपनाना जिनके द्वारा हमारा शुद्ध आत्मस्वरूप स्पष्ट प्रकट हो। अत कुलधर्म का अर्थ परिवार के सदस्यों द्वारा मिलजुलकर अनुशासन और ज्ञान के साथ रहने के नियमों से है। परिवार में नियमपूर्वक रहने से देश के एक योग्य नागरिक के रूप में भी हम आर्य संस्कृति को जी सकते हैं।

पूर्व श्लोक की टीका का अर्थ अर्जुन के इस वाक्य से और अधिक स्पष्ट हो जाता है। जैसा कि हमने देखा धर्म का अर्थ है भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति जिसका प्रशिक्षण प्रत्येक घर में ही प्रारम्भ से मिलता था।

अर्जुन का यह भय कि इस गृहयुद्ध से जातिधर्म व कुलधर्म नष्ट हो जायेंगे सामान्य ज्ञान की बात है। यह सुविदित है कि प्रत्येक युद्ध के बाद समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का सहसा कितना पतन होने लगता है। अनैतिकता और छलकपट की प्रवृत्तियों के नीचे दबा हाँफ रहा आज का युग उपरोक्त तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है। युद्ध के बाद न केवल लंगड़े लूलों की संख्या बढ़ती है वरन् उससे भी भयंकर परिणाम मन की गंभीर विकृतियों के रूप में सामने आते हैं।

इन श्लोकों में हम अर्जुन को संसार के सर्वप्रथम युद्धविरोधी व्यक्ति के रूप में पाते हैं। इन अनुच्छेदों में वह शान्ति प्रिय लोगों के लिये सार्वकालिक तर्कों की एक सुन्दर श्रृंखला भेंट करता है।

गीता में महर्षि व्यास ने प्रथम अध्याय में अर्जुन के माध्यम से युद्ध के विनाश की जो तस्वीर बताई है उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। लगभग सभी धर्मो में अहिंसा को सर्वोपरि माना है, किंतु हिंसा भी शांति के लिए ही प्रयास होता है जब इसे कर्तव्य धर्म में निर्लिप्त भाव से किया जाए। जिसे हम आगे पढ़कर समझेंगे।

अर्जुन अपनी व्यथा का अधिक से अधिक विस्तार भगवान श्री कृष्ण के समर्थन के लिए कर रहे है, यह भी अवसाद में घिरे व्यक्ति की कमजोरी होती है कि उसे कोई गलत नही समझे, इस का भी वह प्रयास करता रहता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01.42-43 ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 1.44–45॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥44।।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥45।।

"utsanna-kula-dharmāṇām,
manuṣyāṇāḿ janārdana

narake niyataḿ vāso,
bhavatīty anuśuśruma"।।44।।

"aho bata mahat pāpaḿ,
kartuḿ vyavasitā vayam
yad rājya-sukha-lobhena,
hantuḿ sva-janam udyatāḥ"।।45।।

भावार्थ :

हे जनार्दन! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्यों का अनिश्चित काल तक नरक में रहना पडता है, ऐसा हम सुनते आए हैं।

ओह! कितने आश्चर्य की बात है कि हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान पाप करने को तैयार हो गए हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से अपने प्रियजनों को मारने के लिए आतुर हो गए हैं॥ ४४-४५॥

Meaning:

People whose societal values have eroded, O Janaardana, reside in hell indefinitely, this I have heard.

Alas! It's unfortunate that we have decided to undertake this extreme sin. Our greed towards the pleasures of the kingdom has prepared us to kill our kinsmen.

Explanation:

Here, Arjuna concluded an argument that he had begun a few verses prior. According to him, a rise in lawlessness began a chain reaction which caused the entire civilization, not just the warmongers, to end up residing in hell indefinitely. That is called psychological disaster, and when such people come to the society, the psychological disaster of individual mind will lead to sociological disaster and the crime graph increases. The circle of living in lawless society is vicious generation to generation.

Arjuna bases his argument not on his own personal experience, but on what he has heard from the authorities. That is the way of receiving real knowledge. One can not reach the real point of factual knowledge without being helped by the right person who is already established in that knowledge.

Let's summarize this argument. What Arjuna is saying, in simple words, is that the Kaurava army is committing the sin of destroying the Kuru clan. Since he can see that it is a sin, he will not join them in this act, and therefore not fight.

Again, we see moha at work here. Duryodhana had moha for the Kauravas, whereas Arjuna had moha for the entire Kuru dynasty. Even though Arjuna was more large-hearted than Duryodhana in his moha, moha clouded his judgement the same way it clouded Duryodhana's judgement.

Arjun was surprised; despite being aware that this war would only bring misfortune to all, those who were in the battlefield and the families they would leave behind; they were all hankering to commit this sin. He started with the word “aho,” which means ‘alas’. He had enumerated all the possible

catastrophes that were imminent if this war took place, but he was ignoring the very fact that if the wrongdoers were not punished, it would cause greater damage to the society.

Often, we keep blaming the circumstances or others but turn a blind eye towards our own weaknesses. Arjun's justification for not killing his greedy cousins and relatives was driven by his own attachment and compassion towards them. Even though he felt it was a sin to kill them, as they were his relatives, he did not realize that his sentiments were actually materialistic and not transcendental. Blinded by compassion, he had forgotten his dharma as a warrior; that he was beyond this material body.

Being often we have knowledge of the subject, but how to apply the same, we don't know?. What Arjun is doing, it is his emotion, fear and cowardness, he forgets his role as warrior of Pandav Army and think individualistic manner. He needs proper guidance, which we read in rest of chapters.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान् ने मनुष्य को विवेक दिया है, कर्म करने का अधिकार दिया है। अतः यह कर्म करने में अथवा न करने में अच्छा करने में अथवा मन्दा करने में स्वतन्त्र है। इसलिये इस को सदा विवेक विचार पूर्वक कर्तव्य कर्म करने चाहिये। परन्तु मनुष्य सुखभोग आदि के लोभ में आकर अपने विवेक का निरादर कर देते हैं और रागद्वेष के वशीभूत हो जाते हैं जिस से उन के आचरण शास्त्र और कुलमर्यादा के विरुद्ध होने लगते हैं। परिणामस्वरूप इस लोक में उन की निन्दा अपमान तिरस्कार होता है और परलोक में दुर्गति नरकों की प्राप्ति होती है। अपने पापों के कारण उन को बहुत समय तक नरकों का कष्ट भोगना पड़ता है। ऐसा हम परम्परा से बड़ेबूढ़े गुरुजनों से भी सुनते आये हैं।

इस के उपरान्त भी भगवान् कुछ नहीं बोले। अब अर्जुन की स्थिति ऐसी हो गयी थी कि वह न तो चुप रह सकता था और न उस को नये तर्क ही सूझ रहे थे। परन्तु भगवान् के मौन का प्रभाव भी अनूठा ही था। इस श्लोक में अर्जुन पारम्परिक कथन ही उद्धृत करता है।

हिन्दुओं के लिये धर्म ही संस्कृति है। इसलिये कुलधर्म के महत्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। इसी कारण अर्जुन यहाँ एक बार फिर कुलधर्म नाश के दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

यहां श्लोक में "अहो और बत" ये दो पद आये हैं। इन में से अहो पद आश्चर्य का वाचक है। आश्चर्य यही है कि युद्ध से होने वाली अनर्थ परम्परा को जानते हुए भी हम लोगों ने युद्धरूपी बड़ा भारी पाप करने का पक्का निश्चय कर लिया है दूसरा बत पद खेद का दुःख का वाचक है। दुःख यही है कि थोड़े दिन रहेने वाले राज्य और सुख के लोभ में आकर हम अपने कुटुम्बियों को मारने के लिये तैयार हो गये हैं ।

अर्जुन की बौद्धिक निराशा और मन की थकान स्पष्ट दिखाई पड़ती है जो वास्तव में बड़ी दयनीय है। आत्मविश्वास को खोकर वह कहता है अहो हम पाप करने को प्रवृत्त हो रहे हैं . इत्यादि। इस वाक्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि परिस्थिति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के स्थान पर अर्जुन स्वयं उसका शिकार बन गया है। आत्मविश्वास के अभाव में एक कायर के समान वह स्वयं को असहाय अनुभव कर रहा है।

मन की यह दुर्बलता उसके शौर्य को क्षीण कर देती है और वह उसे छिपाने के लिये महान प्रतीत होने वाली युक्तियों का आश्रय लेता है। युद्ध के लक्ष्य को ही उसने गलत समझा है और फिर धर्म के पक्ष पर स्वार्थ का झूठा आरोप वह केवल अपनी कायरता के कारण करता है। शान्तिप्रियता का उसका यह तर्क अपनी सार्मथ्य को पहचान कर नहीं वरन् मन की दुर्बलता के कारण है।

यहाँ अर्जुन की दृष्टि युद्धरूपी क्रिया की तरफ है। वे युद्धरूपी क्रिया को दोषी मान कर उस से हटना चाहते हैं परन्तु वास्तव में दोष क्या है इस तरफ अर्जुन की दृष्टि नहीं है। युद्ध में कौटुम्बिक मोह स्वार्थभाव कामना ही दोष है पर इधर दृष्टि न जाने

के कारण अर्जुन यहाँ आश्चर्य और खेद प्रकट कर रहे हैं जो कि वास्तवमें किसी भी विचारशील धर्मात्मा शूरवीर क्षत्रिय के लिये उचित नहीं है।

अर्जुन शूरवीर, पारिवारिक, परंपरागत गुरुकुल से शिक्षित एवम अनेक विद्वानों से ज्ञान प्राप्त व्यक्ति है। वह समझ रहा है कि पारिवारिक दृष्टि से युद्ध का निर्णय लेना गलत है, इस लिये पहले मोह, फिर हार से डर, कुल नाश और अब अपने शास्त्र ज्ञान से यह सिद्ध करने में लगा है कि युद्ध मे जाने का उस का निर्णय अपने ही लोगो से युद्ध करने के कारण गलत है।

शाब्दिक ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मसात ज्ञान में यही अंतर को समझना अत्यंत आवश्यक है, जिसे हम भगवान श्री कृष्ण द्वारा समझेंगे, किन्तु बिना योग्यता एवम ज्ञान प्राप्ति की लालसा के लिये इस को समझ पाना मुश्किल है।

बहुत से लोग अपने ज्ञान से इतने संतुष्ट भी रहते है कि वह अपने मन के द्वार भी ज्ञान प्राप्ति के लिये बन्द कर के अहम में डूबे रहते है। उन को गीता या तो समझा हुआ ग्रंथ लगता है या बिना पढ़े ही तर्क का विषय। अतः अध्ययन नम्र हो कर करना चाहिए।

अर्जुन अपनी बात की समाप्ति पर आ गया जिस को हम आगे के दो श्लोकों में देखेंगे। गीता में इस प्रथम अध्याय में गीता का कोई उपदेश नही और कृष्ण का सिर्फ दो शब्द बोलना "कुरु पश्य" का क्या महत्व है और अर्जुन को बिना रोके सुनना का क्या उद्देश्य है यह भी समझेगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। 01. 44 - 45 ।।

।। विशेष ।। 01. 44-45 ।।

गीता में अर्जुन के माध्यम से पारिवारिक कलह में किसी व्यक्ति की मानसिकता को बहुत अच्छे तरीके से दर्शाया गया है। बहुतयः परिवार में कोई व्यक्ति बाहर वालो के बहकावे में आ कर लोभ, स्वार्थ, कपट एवम आसक्ति भाव से सम्पति पर अधिकार जमाने की चेष्टा करने लगता है, जिस पर उस कोई अधिकार नही है, यहां दुर्योधन मामा शकुनि के बहकावे में है एवम अब वह पांडवो के राज्य को हड़पना चाहता है। बुजुर्ग मोह में फस कर, अपनी आसक्तियों, अपनी प्रतिबद्धता एवम संस्कारो की कमी के रहते अपने पुत्रों को रोकने में असमर्थ रहते है। जिसे हम यहाँ धृष्टराष्ट्र के रूप में देख रहे है। घर के अन्य रिश्तेदार मान मर्यादा एवम अपनी ही बनाई सीमा के कारण यह तो जानते है कि यह गलत है किंतु कुछ भी बोलने से कतराते है, किन्तु अपरोक्ष रूप में ऐसे व्यक्ति के साथ मजबूरी में खड़े है जिन्हें हम भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के नाम से जान सकते है। कुछ मित्र जो स्वयं में स्पष्टवादी है और स्वीकार भी करते है कि जो हो रहा है, वह गलत है, किन्तु मित्रतावश इस प्रकार के व्यक्ति के साथ रहते है। अतः हम कह सकते है कि जब कोई पारिवारिक व्यक्ति अनैतिक तरीके के किसी का हक छिनने की चेष्टा करता है, तो स्वयं के भाई बहनों के अतिरिक्त परिवार का कोई व्यक्ति उस के विरुद्ध हो कर साथ नही देता। यदि एक आध देता भी है, तो उस के विरोध का कोई मूल्य नही होता। यहाँ हम इन्हें सत्य बोलने वाले विदुर जो युद्ध में शामिल नहीं हुए या फिर दुर्योधन के एक भाई के रूप में देखते है जिस ने पांडव की ओर से युद्ध लड़ा।

इस परिस्थिति में अर्जुन के समान सब से स्नेह रखने वाले, सामर्थ्य व्यक्ति को क्या करना चाहिए। उस के सामने पारिवारिक मोह, ममता, समाज, सभ्यता एवम संस्कृति के पालन का प्रश्न खड़ा रहता है। यह किमकृतर्व्यविमुडता की ऐसी स्थिति है जहां विरोध भी करे तो परिवार के लोग उसे ही दोष देते है,कि यह तो मूर्ख है, किन्तु वह सामर्थ्यवान समझदार है, उसे घर को नष्ट करने वाला नही बनना चाहिये। यदि परिवार नष्ट होगा तो दोष उसे ही मिलेगा।

पारिवारिक कलह से आपसी मेल मुटाव इतना अधिक हो जाता है कि अर्जुन जैसी सोच रखने वाला व्यक्ति दुसरो के प्रति आंतरिक सम्मान के कारण कुछ भी न तो बोल पाता है और न ही कर पाता है। ऐसी हालत में उस के पास दो ही रास्ते है या तो युद्ध करे या सब त्याग कर संतोष करे।

अर्जुन युद्ध नही चाहता था, जो हो रहा था, वह परिस्थितियां तैयार कर रही थी। किन्तु जो सह्रदय, समर्थ, अपने दायित्व को समझता है, वह दुनिया मे किसी से भी युद्ध कर सकता है, किन्तु अपने ही घर मे अपने ही परिवारवालो से हार जाता है। यह हमारे अंतर्मन के संस्कारों, कर्तव्य धर्म की लड़ाई अपनी ही मोह, ममता एवम सामाजिक भय के विरुद्ध है।

इस असमंजस की पृष्ठभूमि में गीता का ज्ञान दिया गया है, जिसे भगवान श्री कृष्ण ने निष्काम कर्म योग कहा है। उन्हेंने अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित नही किया, उन्होंने उसे अपने कर्तव्य धर्म का पालन करने को कहा जो अर्जुन को एक योगी की भांति निष्काम भाव से प्रकृति से संपादित क्रिया में मात्र एक पात्र बन कर पूर्ण करने है।

हम सब प्रकृति द्वारा रचित पटकथा के कलाकार की भांति है जिस में कहानी पहले से लिखी है और हमे अपना रोल अदा करना है। वह कर्तव्य धर्म समझ कर करे या मजबूरी में, जो लिखा से वह तय है। अपने मूल ब्रह्म स्वरूप को समझना एवम अपने निमित कर्म को निष्काम भाव से करना, इसे ही गीता में आगे 17 अध्याय में समझाया गया है।

संक्षेप में, मुझे जितना ज्ञान है, यही कह सकते कि जब भी ऐसी परिस्थितियों का सामना हो जाये तो अपनी क्षमता एवम विवेक के अनुरूप बिना स्वार्थ एवम लोभ के उस परिस्थिति का सामना करना चाहिए। हमारा उद्देश्य कर्तव्य पालन का होना चाहिये, न कि दूसरे को हराने या सबक सिखाने का और न ही किसी सम्पति पर हक प्राप्त करने का। आसुरी प्रवृति का प्रतिकार निष्काम कर्मयोगी की भांति हो, जिस से हम अपना कर्म बिना किसी फल की आशा से प्रकृति की क्रिया को समझते हुए ही करे। यदि हम किसी भी आसुरी या तामसी प्रवृति का प्रतिकार नही करते, तो यह हमारे कर्तव्य धर्म का पालन नही होगा एवम हमे जाने-अनजाने में प्रतिकार न करने के कृर्तव्य भाव के कारण फल को भोगना होगा।

प्रथम अध्याय में विभिन्न चरित्र के चित्रण करने का उद्देश्य संभवत: महर्षि व्यास जी का यही था कि ज्ञान प्राप्त करने का पात्र कौन हो सकता है, जीवन में सभी अपने अपने उद्देश्य, आकांक्षाओं, कामनाओं और अहम के लिए जीते है, इसलिए नियम में न्याय और अन्याय का शास्त्रों में को अर्थ है, वह व्यवहार में नही। हिंसा में किसी का भला नही हो सकता, युद्ध ही पीढ़ियों तक विनाश में ले जाता है फिर भी युद्ध के बाद की शांति लोभ, स्वार्थ और अनैतिक मूल्यों की समाप्ति के लिए अनिवार्य है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1. 44- 45।।

॥ श्रीमद्‍भगवद्‍गीता ॥ 1.46॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्‌ ॥

"yadi mām apratīkāram,
aśastraṁ śastra-pāṇayaḥ..I
dhārtarāṣṭrā raṇe hanyus,
tan me kṣemataraṁ bhavet"..II

भावार्थ :

यदि मुझ शस्त्र-रहित विरोध न करने वाले को, धृतराष्ट्र के पुत्र हाथ में शस्त्र लेकर युद्ध में मार डालें तो भी इस प्रकार मरना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर होगा॥ ४६॥

Meaning:

Even if I, unarmed and non-resistant, am killed in war by the sons of Dhritraasthra, who are armed with weapons, this will be beneficial for me.

Explanation:

I consider that as sacrificing my life for the sake of Dharma. I am going to consider it as like fasting people do. For the sake of the party, similarly self-immolation, they are considered to be rational party. I do not know how self-immolation and rationalism go together. There is no connection. Whatever it might be. Arjuna says that even if we have to sacrifice our lives, for the sake of saving the society, I do not mind. That I consider as fortune for me.

This is the final statement uttered by Arjuna in the first chapter of the Gita. It shows the extent of delusion in Arjuna's mind, as he morphed from a mighty warrior into a pathetic, weak, helpless individual. Arjuna was desperately looking to escape the difficult situation he found himself in, and so his mind came up with all kinds of arguments to justify this escape, including making the escape "beneficial".

Arjuna bases his argument not on his own personal experience, but on what he has heard from the authorities. That is the way of receiving real knowledge. One cannot reach the real point of factual knowledge without being helped by the right person who is already established in that knowledge.

And having said these words, Arjuna has exhausted everything. He has given a big lecture also and all these three problems have come out fully. rāgaḥ, śōkaḥ and mōhaḥ and Arjuna stops his words and what about Krishna. As I said utter strategic silence. because even if Krishna speaks now, Krishna knows that Arjuna is not going to listen. Therefore Krishna does not speak. Arjuna does not. And what does he say:

Let us revisit our friend Mr. X. He has been laid off due to the recession, and has been out of work for 3 months. He has not interviewed in over 2 weeks now. As time goes by, his confidence begins to weaken. If his mind cannot maintain equanimity, it will lead him down a path similar to Arjuna's fall. He begins to think that there's no point in applying for more jobs since there aren't any, and even if he gets an interview call, he has to compete with more qualified candidates. Therefore, there's no point even trying. In fact, it's better to stay at home and do nothing because there's no point applying for a job in a bad economy. Just look at how his mind has generated perverse logic to preserve the ego.

There's another point to note here : Shri Krishna kept quiet throughout Arjuna's rant. He wanted Arjuna to expel every perverse argument out of his system, in preparation for the teaching of the Gita.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यहाँ अर्जुन अपने अन्तिम निर्णय की घोषणा करता है। सब प्रकार से परिस्थिति पर विचार करने पर उसे यही उचित जान पड़ता है कि रणभूमि में वह किसी प्रकार का प्रतिकार न करे चाहें कौरव उसे शस्त्ररहित जानकर सैकड़ों बाणों से उसके सुन्दर शरीर को हरिण की तरह विद्ध कर दें।

यहाँ अर्जुन द्वारा प्रयुक्त क्षेम शब्द विचारणीय है क्योंकि वह शब्द ही उसकी वास्तविक मनस्थिति का परिचायक है। क्षेम और मोक्ष शब्द के अर्थ क्रमश भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति हैं। यद्यपि अर्जुन ने अब तक जो भी तर्क प्रस्तुत किये उनमें आध्यात्मिक संस्कृति के पतन के भय को बड़े परिश्रम से सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु क्षेम शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि वह वास्तव में शारीरिक सुरक्षा चाहता था जो युद्ध पलायन में संभव थी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि युद्ध में विजयरूपी फल में अत्यन्त आसक्ति और उसकी चिन्ता के कारण अर्जुन आत्मशक्ति खोकर एक उन्माद के मानसिक रोगी के समान विचित्र व्यवहार करने लगता है।

जो मनुष्य अपने लिये जिस किसी विषय का वर्णन करता है उस विषय का उस के स्वयं पर असर पड़ता है। अर्जुन शुरुवात में पराक्रमी योद्धा की भांति युद्ध लड़ने को तैयार थे, किंतु सेना निरीक्षण के बाद अर्जुन ने भी जब शोकाविष्ट होकर अट्ठाईसवें श्लोक से बोलना आरम्भ किया तब वे उतने शोकाविष्ट नहीं थे जितने वे अब शोकाविष्ट हैं। पहले अर्जुन युद्ध से उपरत नहीं हुए पर शोकविष्ट होकर बोलते बोलते अन्त में वे युद्ध से उपरत हो जाते हैं और बाणसहित धनुष का त्याग कर के बैठ जाते हैं। भगवान् ने यह सोचा कि अर्जुन के बोलने का वेग निकल जाय तो मैं बोलूँ अर्थात् बोलने से अर्जुन का शोक बाहर आ जाय भीतर में कोई शोक बाकी न रहे तभी मेरे वचनों का उस पर असर होगा। अतः भगवान् बीच में कुछ नहीं बोले।

अब तक अर्जुन ने अपने को धर्मात्मा मान कर युद्ध से निवृत्त होने में जितनी दलीलें युक्तियाँ दी हैं संसार में रचे पचे लोग अर्जुन की उन दलीलों को ही ठीक समझेंगे और आगे भगवान् अर्जुन को जो बातें समझायेंगे उन को ठीक नहीं समझेंगे इस का कारण यह है कि जो मनुष्य जिस स्थिति में हैं उस स्थिति की उस श्रेणी की बात को ही वे ठीक समझते हैं उस से ऊँची श्रेणी की बात वे समझ ही नहीं सकते। अर्जुन के भीतर कौटुम्बिक मोह है और उस मोह से आविष्ट होकर ही वे धर्म की साधुता की बड़ी अच्छी अच्छी बातें कह रहे हैं। अतः जिन लोगों के भीतर कौटुम्बिक मोह है उन लोगों को ही अर्जुन की बातें ठीक लगेंगी। परन्तु भगवान् की दृष्टि जीव के कल्याण की तरफ है कि उस का कल्याण कैसे हो भगवान् की इस ऊँची श्रेणी की दृष्टि को वे (लौकिक दृष्टिवाले) लोग समझ ही नहीं सकते। अतः वे भगवान् की बातों को ठीक नहीं मानेंगे प्रत्युत ऐसा मानेंगे कि अर्जुन के लिये युद्धरूपी पाप से बचना बहुत ठीक था पर भगवान् ने उन को युद्ध में लगाकर ठीक नहीं किया।

वास्तव में भगवान् ने अर्जुन से युद्ध नहीं कराया है प्रत्युत उन को अपने कर्तव्य का ज्ञान कराया है। युद्ध तो अर्जुन को कर्तव्यरूप से स्वतः प्राप्त हुआ था। अतः युद्ध का विचार तो अर्जुन का खुद का ही था वे स्वयं ही युद्ध में प्रवृत्त हुए थे तभी वे भगवान् को निमन्त्रण दे कर लाये थे। परन्तु उस विचार को अपनी बुद्धि से अनिष्टकारक समझ कर वे युद्ध से विमुख हो रहे थे अर्थात् अपने कर्तव्य के पालन से हट रहे थे। इस पर भगवान् ने कहा कि यह जो तू युद्ध नहीं करना चाहता यह तेरा मोह है। अतः समय पर जो कर्तव्य स्वतः प्राप्त हुआ है उस का त्याग करना उचित नहीं है। इसलिए यदि कुछ लोग गीता को युद्ध का शास्त्र समझ कर पढ़ते है और यह समझते है कि उन्हें अपने कार्य के लिए अपनों से भी लड़ना पढ़े तो भी पीछे न हटे तो वे लोग गलत ही है। अपने से विपरीत परिस्थितियों में विवेक द्वारा अपने कर्तव्य को समझना ही गीता की आधार शिला है, जिसे युद्ध भूमि की पृष्ठ भूमि में लिखा गया है क्योंकि उस से कठिन कोई अवस्था हो नही सकती।

जब ज्ञान आप के जीवन का हिस्सा नहीं होता तो ऊंची और श्रेष्ठ बाते लोग अपने व्यक्तित्व को चमकाने और अन्य को प्रभावित करने के लिए करते है। व्यवहार में मेरा अनुभव यही कहता है कि पति -पत्नी के आपसी विवाद में कटुता, अवसाद और विषाद दोनो ओर फैला रहता है,किंतु समस्या का निदान सही सलाहकार और घर के शुभ चिंतकों के साथ हो सकता है। अक्सर घर के शुभ चिंतक बिना विचारे एक पक्षीय निर्णय देने वाले होते है, इसलिए अवसाद में घिर कर बिना सोचे समझे और विवेक के यह निर्णय ले लिया जाता है कि अब दोनो का साथ रहना संभव नही, इसलिए इन्हे अलग हो जाना चाहिए। फिर यही निर्णय दोनो के दिमाग में यही लोग भर देते है। अर्जुन का शास्त्र ज्ञान भी कुछ ऐसा ही है, जिसे वह विवेक से सही स्थान पर प्रयोग नहीं करता और निर्णय भी ले लेता है कि चाहे मुझे विरोधी मार भी दे, मैं स्वजनों के विरुद्ध युद्ध नही कर सकता। यही ज्ञान आधुनिक युग के पति - पत्नी के झगड़े में आ जाता है, चाहे कोई कुछ भी कहे, अब हम साथ साथ नही रह सकते। यही अपरिपक्वता है। जो अर्जुन अपने निराशा भाव के सारांश में कह रहा है। किंतु अर्जुन के पास कृष्ण जैसे सार्थक ज्ञानी और सलाहकार है।

कुरुक्षेत्र हो या आज का व्यवहारिक जगत, जो आंख, कान, मुख, मस्तिष्क या देखा, सुना, पढ़ा या याद किया हुआ वेदांत या ज्ञान है, वह मात्र कंप्यूटर की भांति अनुवाद है। ज्ञान वही है जो हृदय से अनुभवित कर के धारण किया जाए, जो हमारे आवरण का विषय न हो कर आचरण का परिमाण हो। पूर्वश्लोक में अर्जुन ने अपनी दलीलों का निर्णय सुना दिया। उस के बाद अर्जुन ने क्या किया इस को सञ्जय आगे के श्लोक में बताते हैं।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.46।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 1.47॥

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्‌ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्‌ ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

"sañjaya uvāca,
evam uktvārjunaḥ saṅkhye,
rathopastha upāviśat..I
visṛjya sa-śaraṁ cāpaṁ,
śoka-saṁvigna-mānasaḥ"..II

भावार्थ :

संजय ने कहा - इस प्रकार शोक से संतप्त हुआ मन वाला अर्जुन युद्ध-भूमि में यह कहकर बाणों सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया॥ ४७॥

Meaning:

Having said these words in the battlefield, Arjun sat in the center of his chariot, casting off his weapons, his mind disturbed with sorrow.

Explanation:

Arjun's reluctance to fight the war had now reached its climax. He had now surrendered to his grief and slumped into deep dejection. His condition was the creation of his own material attachments and caused his dereliction of duty. This was a completely unexpected behavior from someone who was considered the epitome of devotion and self-surrender to God. In fact, before the battle, when both parties were mobilizing their armies; given a choice between the entire armed Yadu army and the unarmed Lord Shree Krishna; Arjun chose the Lord, as he had complete faith in him.

Arjuna ended his rant in this verse, which is the final verse in Chapter 1. His body language reflects his state of mind as he threw away his weapons and sat down on his chariot, in the midst of the battlefield. Sanjay the narrator took over here, and possibly gave a glimmer of hope to Dhritraashtra, who was hoping that this action of Arjuna could end the war even before it began.

Let us reflect upon the first chapter of the Bhagavad Gita, in preparation for the second chapter. Arjuna, ready for war, under the influence of his ego and mind, became weak when Shri Krishna moved the chariot in between the Paandava and Kaurava armies.

Now, we may never face a war in our lifetime, but we will undoubtedly face conflicts in life where we lose our mental equipoise, and need guidance on what the right course of action is. Death of a loved one, hard economic conditions, issues with family members or friends, a bad boss, a stressful job - life is full of conflict-ridden situations.

This chapter is called "Arjuna Vishaada Yoga", or the Yoga of Arjuna's dejection. We will delve deeper into the meaning of the word Yoga later, but for now, let's assume that it means technique or method that shows how one should conduct oneself in a life situation.

So why is Arjuna's dejection called a technique or a method? Let's take an example. Assume you own a car, and ever since you owned the car for about 10 years or so. You have never had an accident, and you never had the need to get a car insurance policy. But one fine day, you drive into your neighbour's car, and end up owing him a gigantic sum of money. From that day onwards, you will never ever drive a car without insurance. So, what this means is that you had to pass through an extremely difficult situation in order to gain the knowledge that insurance is important.

Similarly, Arjuna had to pass through an extremely difficult life situation which jolted him so much that it made him realize that he was missing something essential. He did not know how to conduct himself in such a difficult situation. Fortunately for him, Shri Krishna was right there to provide him that instruction. But without passing through that tough life situation, he never would have realized the need for such an instruction. Therefore, just like any other chapter in the Gita, this chapter is also a Yoga, or a method, of how to conduct one's life correctly.

Each chapter of the Gita concludes with a sentence that acts as a marker signifying the end of the chapter. These traditions were followed as a means to make memorization easier, among other things. Every end-of-chapter market contains the phrase

"Shri-Krishna-Arjuna-Samvade" which means "a dialogue between Shri Krishna and Arjuna".

।। हिंदी समीक्षा ।।

युद्ध करना सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है युद्ध करने से यहाँ कुटुम्बियोंका नाश होगा परलोक में नरकों की प्राप्ति होगी आदि बातों को युक्ति और प्रमाण से कह कर शोक से अत्यन्त व्याकुल मनवाले अर्जुन ने युद्ध न करने का पक्का निर्णय कर लिया। जिस रणभूमि में वे हाथ में धनुष ले कर उत्साह के साथ आये थे उसी रणभूमि में उन्होंने अपने बायें हाथ से गाण्डीव धनुष को और दायें हाथ से बाण को नीचे रख दिया और स्वयं रथ के मध्यभाग में अर्थात् दोनों सेनाओं को देखने के लिये जहाँ पर खड़े थे वहीं पर शोकमुद्रा में बैठ गये।

गीता का प्रथम अध्याय की समाप्ति पर पुनः विचार करे तो पाएंगे कि धृष्टराष्ट्र युद्ध का हाल जानने को आतुर है एवम दुर्योधन युद्ध मे अपेक्षा से ज्यादा शत्रु को ताकतवर पा कर अपने सहयोगियों से जीतने की उम्मीद लगाए हुए, युद्ध का शंखनाद हो चुका है और अर्जुन जैसे संवेदनशील योद्धा जो युद्ध के लिए अपने अधिकारों के लिए तैयार कृष्ण द्वारा युद्ध का निरीक्षण करने को निकलता है फिर कृष्ण द्वारा उसे युद्ध के मध्य में खड़ा हो कर "कुरु पश्य" कहना।

दैनिक जीवन की दृष्टि से जब भी किसी भी काम के लिए हम तैयार होते है तो सर्वप्रथम कुरु पश्य की भांति हमारे सामने और हमारे साथ जो आता है वो

1. भीष्म पितामह के रूप में पूर्वजो द्वारा दी हुई विचार धारा, संस्कार और शिक्षा

2. द्रोणाचार्य के रूप में गुरु द्वारा दी हुई शिक्षा

3. कर्ण के रूप में सिंद्धान्तों की लड़ाई एवम अपने ऊपर किए हुए उपकार का अहसान

4. दोस्त, मित्र गण, परिवार भाई द्वारा जीवन के नियम जिन का हम पालन करते है।

अक्सर सफलता प्राप्त करने के लिए इन सब से और इन सब के विरुद्ध ही लड़ना पड़ता है। यदि युद्ध जितना अपना कर्तव्य है तो फिर आप को अपने कर्तव्य के लिए इन सब विचारधाराओं के साथ और इन के विरुद्ध युद्ध करना है, जो विचारधारा एक समय सही हो जो इस परिस्थिति में भी सही होगी, नही कह सकते।

भगवान राम मर्यादा पुरूषोतम थे और भगवान कृष्ण पूर्ण अवतार। कृष्ण चरित्र में किसी भी मर्यादा का पालन नही किया, किन्तु जन कल्याण हेतु निस्वार्थ भाव से कर्तव्य का पालन किया गया।

हम अक्सर अपने शिक्षा, ज्ञान, मोह, लोभ, परिवार, समाज द्वारा एक बंधन में अपने को बांध कर जीते है और अक्सर कई बार इन सब के कारण अपने अवसर को खो भी देते है। गीता हमे कर्तव्य पालन का बोध करवाती है कि किस समय क्या सही और क्या गलत है।

अर्जुन को पूर्ण रूप से सुनने के बाद ही गीता में कृष्ण बोलते है तांकि वो यह जान सके कि सामने व्यक्ति जो युद्ध मे प्रवीण है किस प्रकार के विचार मोह, लोभ, भय एवम ज्ञान द्वारा रखता है, न्याय में मध्यस्थता में सिखाया गया यह प्रथम पाठ होता है। जब अपनी पूरी बात कह लेने बाद व्यक्ति पूरी तरह से निढाल हो जाता है तो ही किसी की बात को सुनने और मानने के लिए तैयार होता है। इस लिये प्रथम अध्याय को विषाद योग भी कहा गया है। योग का मतलब जुड़ना और विषाद मतलब अपने सम्पूर्ण तर्क अव विचार धाराओं में कोई उत्तर न पा कर समर्पित भाव से।

गीता का यह प्रथम अध्याय किसी भी जीव के अहम, मोह, ममता, कामना और भय को दर्शाता है। जीव ज्ञानी होते हुए भी, प्रकृति के मायाजाल में अपने को प्रतिबद्ध मानता है। इसलिए जीव को प्रकृति और ब्रह्म के मध्य अपने नित्य, साक्षी, दृष्टा एवम अकर्ता स्वरूप का ज्ञान होना एवम उस ज्ञान के साथ निर्लिप्त, निस्वार्थ और निष्काम हो कर कर्म कैसे करना, यह हम गीता के विभिन्न अध्याय में पढ़ेंगे, भगवान श्री कृष्ण अहंकार, मोह, ममता, आसक्ति, कामना में कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव से किस प्रकार मुक्त हो कर निष्काम कर्मयोग का ज्ञान देंगे। इसलिए अर्जुन कोई ओर नही, आप ही है और यदि कोई यह कहे कि आप इस संसार में अपना परिवार, व्यापार, धन संपदा, सुख - साधन के मालिक नही है, इन के साथ निर्लिप्त हो कर निष्काम बिना सन्यास या वैराग्य के अनुसार वन में जाए, रहना है, तो शायद आप भी अर्जुन की भांति निढाल हो बैठ जाएंगे। प्रकृति के प्रतिबद्धता से हमारा ज्ञान वास्तव में अज्ञान ही है, जिसे हम तर्क द्वारा सत्य सिद्ध करते हुए, अर्जुन के तर्कों की भांति संतुष्ट है। किंतु जिसे ज्ञान कहा जाता है, वह पढ़ने - सुनने या लिखने की वस्तु नहीं है, वह तो आत्मसात करने गया है। जीव प्रकृति के साथ भ्रमित हो कर, जिस भी ज्ञान का सहारा लेता है, वह दया, धर्म, दान, यज्ञ और जप सभी प्रकृति का ही ज्ञान है। इसलिए प्रथम अध्याय वस्तुत: अर्जुन के माध्यम से महर्षि व्यास जी गीता पढ़ने वाले को ही चित्रित किया है। विचार करे।

गीता में भी यदि हम अपने पूर्वाग्रह से ग्रसित हो कर अध्ययन करेगे तो अंत तक तर्क ही करेगे। किन्तु उस को समर्पित भाव से विवेकपूर्ण ग्रहण एवम मनन करेगे तो ही हम अपने जीवन शेली में उतार पाएंगे। गीता के अध्ययन में अत्यंत तीव्र इच्छा मोक्ष की होनी ही चाहिये, क्योंकि गीता स्वयं में एक योग है, जो जीवन कैसे जीना चाहिए जिस से हम बन्धनमुक्त हो कर अपने मनुष्य जीवन को सार्थक जीते हुए मोक्ष को प्राप्त हो।

।। हरि ॐ तत सत ।।01.47।।

॥ श्रीमद्‍भगवद्‍गीता ॥ अध्याय: १ सारांश॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे धर्मकर्मयुद्धयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः॥1॥

भावार्थ :

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद भगवदगीता के श्रीकृष्ण- अर्जुन संवाद में धर्म कर्म युद्ध-योग नाम का पहला अध्याय संपूर्ण हुआ॥

॥ हरिः ॐ तत् सत् ॥

Summary of Bhagvad Gita Chapter 1:

The message of the first chapter of the Gita is this: The root cause of all sorrow and suffering in this world is our inability to deal with conflict. The sooner we recognize this universal truth, the sooner we can progress in our personal, professional, and ultimately, spiritual journeys. That is why the Gita is not taught to Arjuna in a remote ashram somewhere in the Himalayas amidst chirping birds and rolling meadows. It is taught in the middle of a gruesome battle with swords clanging, trumpets roaring and soldiers screaming.

We experience conflict at three levels - physical, mental and spiritual. At the physical level, conflict is everywhere. Atoms collide against atoms. Weeds take over carefully manicured flowers. Packs of wolves fight for control of territory. And we humans have disagreements with children, siblings, spouses, bosses, co-workers, states and countries. To deal with conflict, we need to learn how to act in this world, including, what to say in each of these situations.

How we conduct ourselves in physical conflict is largely dependent on the state of our minds. Our minds are also always in conflict, primarily between our rational side and our ego. Human beings have evolved to a point where they have the power to control and transcend the primitive urges and impulses that control most animals. These primal urges constitute the ego, the part of our mind that oversimplifies and exaggerates situations, and shuts off the rational part of our mind that can think logically and clearly.

Arjuna's rational mind was clear – he was a warrior, and he entered the battlefield to fight a war against the enemy for a just cause. But, upon seeing his family on the other side, his ego and moha i.e. attachment – the primitive side of his mind – rose up and took control. It made him say, how can I ever kill my family? How can I ever kill my teacher? The inability to reconcile this conflict in his mind led to his mental breakdown in the middle of the battlefield. He literally did not know which side of the battle he was on, and being unable to decide, he wanted to quit. His mind immediately began to rationalize his decision to quit, as seen in the speech he gave to Shri Krishna about how unjust the war was.

So we have seen that conflict at the physical level, and at the mental level, is pervasive. It is an integral part of life. We cannot escape it. There's nothing new here. What's unique about the Gita is its perspective on how we should deal these two levels of conflict. The clue lies in verses 21 and 22, where Shri Krishna positions Arjuna literally in the middle of the two armies, a point from which Arjuna can see his dearest teachers and relatives stationed on the other side of the battlefield, which immediately triggers another conflict - not physical, not mental, but one of identity.

Arjuna now thinks: Who am I? Am I the warrior fighting for a just cause? Or am I the beloved student of my teacher? If I am a warrior, I should be in the Pandava army. If I am a beloved student, I should be in the Kaurava army. But I am both. So what should I do? Since I don't know how to reconcile my identity, let me quit - it is the easiest option I have.

In his speech to Shri Krishna, Arjuna used logic, God and religion to justify his quitting the battle. This is what many of us to - we run away from our conflicts, and use logic, God, religion, and a whole host of rationalizations to justify our quitting to ourselves, and to others. But at the root of it lies our identity crisis. We don't know who we truly are, and therefore, don't know which path to pursue.

This crisis of identity is the third type of conflict, the spiritual conflict. Unless we know who we are, what God (or a higher power) is, and what our relationship to that God is, we will never be able to completely resolve all of our physical and mental conflicts. This is the central theme of the first chapter.

At this point let us consider who Arjun really was. He was definitely not a novice, bereft of spiritual knowledge. His celestial father was Indra, the king of heaven. Arjun had been to his abode and received several boons from him and other celestial beings. In his past life, Arjun was Nar, part of the twin descensions the Nar-Narayan; where Nar was the perfected soul situated in transcendental knowledge and Narayan the Supreme Lord. Then why in the battlefield of Kurukshetra, a grand warrior of such stature was dropping his weapons? What was the cause of his misery?

For the benefit of future generations, Shree Krishna wanted to bring forth the knowledge of the Bhagavad Gita. By intentionally confusing Arjun, the Lord had created this opportunity. In this chapter, Arjun put forth to the Lord several arguments and justifications why he should not fight this war, and in the subsequent chapters Shree Krishna has elaborated upon why Arjun’s arguments were inappropriate, and the way forward.

The second chapter contains Shri Krishna's response to Arjuna's conflicts, and a summary of the entire Gita, which addresses all three conflicts. It explains in detail as to how we can deal with all three of them, so that we can put an end to sorrow and anxiety at their root.

।। हिंदी समीक्षा ।।

प्रथम अध्याय की समाप्ति पर पुनः अवलोकन करें तो सर्व प्रथम हमे यह मिलता है कि गीता का उपदेश युद्ध यानि संघर्ष की परिस्थिति में मिलता है जो अन्य से भिन्न है क्योंकि बाकी ज्ञान शांत वातावरण में दिया गया।

द्वितीय गीता एक सार है जो आर्य लोगो के समस्त वेदों एवम उपनिषदों से तैयार किया गया है,

तृतीय यह स्वयं में हर अध्याय को एक उपनिषद घोषित करता है। व्यक्तिगत जीवन मे प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक, मानसिक एवम आध्यात्मिक संघर्ष में जीता है। प्राकृतिक तौर पर जीवन यापन के लिए पढ़ाई, नौकरी व्यापार, जमीन जायजाद एवम घर समाज, देश एवम विश्व का संघर्ष है जिस में अपनों एवम परायो के साथ उलझना पड़ता है

मानसिक रूप में अपने अहम, मोह, लोभ, काम क्रोध को नियंत्रित करते हुए विभिन्न व्यक्तित्व के रूप में काम करता है जिस के कभी खुशी तो कभी गम में डूबना पड़ता है।

आध्यात्मिक रूप में स्वयं के यक्ष प्रश्न से उलझा पड़ा हमेशा यह सोचता है कि मैं कौन हूँ , मेरा उद्देश्य क्या है मृत्यु एवम जन्म के रहस्य क्या है।

व्यक्ति जो है वो प्राकृतिक रूप में विभिन्न भूमिका ने मा, पिता, भाई बहन, दोस्त, पुत्र, रिस्तेदार जैसे जीता है और इसी कारण विभिन्न स्वरूपो में मानसिक रूप में भी जीता है।

गीता का उपदेश अर्जुन के माध्यम से उस के स्वयं के विभिन्न रिश्तों के बीच का युद्ध जो उस की बदलती मानसिकता की बतलाता है और अंत मे निर्णय हीन हो कर निढाल सा अपने रथ पर बैठ जाता है कि इस युद्ध से इन के हाथों मरना बेहतर

है। इस असमंज सी स्थिति से हम भी गुजरते है किंतु कृष्ण जैसे सारथी एवम गुरु सभी को नही मिलते। गुरु की बाते भी समझने के लिए स्वयं को स्वयं के विचारों से दूर हो कर ही समझी जा सकती है।

अर्जुन जब युद्ध के लिए तैयार था तो शायद यह ज्ञान नही समझता किन्तु जब युद्ध मे आतुर अपने लोगो को देख कर मोह, लोभ, भय एवम अहम से हार कर तर्क संगत को अनिर्णय की इस स्थिति पर पहुच गया कि चाहे मुझे मरना पड़े पर मैं यह युद्ध नही करूगा तो ही समझ सका।

टीकाकारो ने इस अध्याय का नाम अर्जुन विषाद योग कहा है। अर्जुन अनुराग का प्रतीक है, वह सक्षम योद्धा है किंतु मोह, भय एवम अधूरे ज्ञान से ग्रसित है। इसलिये ज्ञान या विरक्ति होने के लिये ह्रदय विकल होना चाहिये। रामचरित मानस में भी कहा गया है ह्रदय बहुत दुख लाग, जन्म गयउ हरि भगति बिनु जब तक ह्रदय में पीड़ा नही, वह व्यक्ति अपने कार्य एवम ज्ञान से संतुष्ट रहता है। स्वस्थ व्यक्ति मुठ्ठी से पहाड़ तोड़ने की बाते करता है किंतु बीमार पड़ते ही इतना लाचार होता है कि चारपाई से भी नही उठ पाता। यही ज्ञान है, जिसे जरूरत है वही ले सकता है। बाकी दुर्योधन या कौरव एवम पांडव के महारथियों जैसे अपने सांसारिक कर्म में उलझे रहते है।

ज्ञान भी सुना हुआ, पढ़ा हुआ, याद कर के बाटा हुआ एवम ह्रदय से आत्मसात किया हुआ, अलग अलग होता है। अपने स्वरूप को केवल और केवल वही प्राप्त कर सकता है जो धैर्य से अंतर्मन से गीता के या ब्रह्म ज्ञान को समझे और आत्मसात करें।

गीता को मोह एवम लोभ ग्रसित धृष्टराष्ट्र को सुना कर यही बताया गया कि जिस का मन एवम बुद्धि सांसारिक लोभ एवम मोह में ग्रसित है, उसे कितना भी ब्रह्मज्ञान दे किया जाए, उस पर कोई असर नही होगा। वह ज्ञान देनेवाले पर अपनी कुढ़न निकालता है। दूसरे जो लोभ, मोह एवम द्वेष के साथ अपने प्रपंच में रचे बसे है, जिन के संसार मे व्यापार, व्यवसाय में धन कमाना एवम सांसारिक अल्प सुखों में आनंद लेना ही जीने का उद्देश्य हो, ऐसे लोग दुर्योधन सरीखे या कौरव एवम पांडव की ओर से लड़नेवाले महायोद्धा सरीखे है, इन मे कोई अर्जुन जैसी विकलता न हो, तब तक इन को भी ज्ञान देना व्यर्थ है। अर्जुन भगवान श्री कृष्ण को समर्पित था, इसलिये उस ने पूरी सेना या निहत्थे भगवान श्री कृष्ण में, भगवान श्री कृष्ण को चुना। समर्पित भक्त की रक्षा का दायित्व स्वयम भगवान ही उठाता है, वही उस मे बुद्धियोग देता है एवम मार्गदर्शन भी करता है। इसलिये अर्जुन को गीता का ज्ञान दिया गया।

जीवन में संघर्ष जीव के राग - द्वेष, मोह, ममता, आसक्ति, कामना एवम अहंकार के कारण है, इसलिए पृष्ठ भूमि युद्ध अर्थात संघर्ष की है, यह ज्ञान किसी को मारने या मरने का नही है, यह ज्ञान जीव के जन्म - मरण के संघर्ष में निष्काम कर्म करते हुए लोकसंग्रह हेतु सृष्टि यज्ञ चक्र में ब्रह्मा के आदेश का पालन करने और प्रकृति का आनंद लेते हुए, सद्चित्तानंद की अवस्था को प्राप्त करने का है।

हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि अर्जुन एक महान योद्धा था जिस ने अनेक युद्ध जीते है। वह इंद्र के आशीर्वाद से कुंती को दुर्वासा ऋषि के वरदान से प्राप्त था। वह नर के रूप में नारायण अर्थात भगवान श्रीकृष्ण का सखा भी था। इसलिए ज्ञानी भी था। महाभारत में उस को मोह उत्पन्न होना और युद्ध के मध्य अपने अस्त्र - शास्त्र को त्याग कर बैठना अवश्य ही भगवान श्री कृष्ण की लीला होगी जिस से अर्जुन के माध्यम से पूरे संसार को द्वैत - अद्वैत का पूरा ज्ञान और संसार में स्थितप्रज्ञ और निष्काम हो अपने कर्मो का संपादन करते हुए मुक्ति अर्थात मोक्ष का उपाय जन सामान्य को भी उपलब्ध कराया जा सके।

हिन्दू धर्म के ग्रंथों का अध्ययन सामान्य जन के लिये कठिन था, इसलिये ज्ञान की बाते पुराणों में कहानियों के माध्यम से बताई गई जिस से भक्ति की महत्ता को ज्यादा महत्व दिया गया। किन्तु लोगो ने किस्से कहानियों को ही सार बना दिया। गीता में हमारी सोच एवम विचारधारा को नया आयाम देने का ज्ञान है, जो मानवीय विकास से सम्बंधित है, यह ग्रंथ किसी धर्म विशेष का न हो कर समस्त संसार मे मानवीय मूल्यों की स्थापना का ग्रंथ है, इसलिये इस विश्व की लगभग हर भाषा मे अनुवाद भी हुआ है।

ईश्वर का अनुग्रह हो तो ही ईश्वर को प्राप्त होने के लिये अवसर मिलता है। अवसर मिलने पर शरणागत हो कर ब्रह्म का स्वरूप आत्मसात करने से अनुग्रह का औचित्य सिद्ध होता है। जो स्वयं मुक्त है वह अज्ञान से घिरा हुआ है, यही बाहरी आवरण गीता कंठस्थ करने, वेदों पर शास्त्रार्थ करने से या उच्च और मौन हो कर मंत्र पढ़ने या यज्ञ से ब्रह्मसन्ध नही होता।

सिद्ध होने का अर्थ ही, स्वयं को प्राप्त कर लेना है जहाँ अहम, कामना या आसक्ति कुछ भी नही। स्वयं को प्राप्त करने का मार्ग श्रद्धा से शुरू होता है और श्रद्धा सहित समर्पण पर स्थिर हो जाता है। केवल श्रद्धा उपासना होती है, अनुभव ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति है, विवेक असंगता में स्थिति है और श्रद्धा और विवेक मिल कर जिज्ञासा बनते है। गीता के ज्ञान में हमारे अंदर जब तक श्रद्धा नही होगी, विवेक का जागरण नही होगा, श्रद्धा युक्त विवेक से जिज्ञासा शांत होगी और हमे अध्ययन के बाद ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति होगी।

गीता के ज्ञान को विस्तार से हम आगे पढ़ना शुरू करते है। आगे के अध्यायों में हम यह सब पढ़ेगे। इसी के साथ प्रथम अध्याय की समाप्ति करते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। अध्याय 1 ।।